**Kavita mein Gita**

Bhagwad Gita is not only a holy scripture. It also teaches us the true values of life Reverend saint Ved Vyas (Munivar Vedvyas) originally scripted 'The Mahabharat' after an extensive study of The Vedas, The Puranas the nice differnt languages Bhagwad Gita is the cruse of life which was explained to Veed Arjuna in the Mahabharat by none other than the Lord Krishna himself. In fact, every one should adopt the relevance of the Shrimad Bhagwad Gita in one's daily life.  
  
The Teachings of Lord Krishna explained in Shrimad Bhagwad Gita are so relevant that we must learn to follow them to remain peaceful, happy and satisfied. There is no scope for any kind of debate on how to make this world a better living place if the mankind follows the teachings of Shrimad Bhagwad Gita. Each one of us should selflessly perform our Karmas for the benefit of our society and for the entire human race. Personal satisfaction and happiness would come automatically. If we perform our Karma for the benefit of the society, there will be no room for jealousy, greed, hatred and other evil feelings in one's mind. Shrimad Bhagwad Gita contains solutions for all problems manking is facing today. The society needs to be reminded of the teachings of Shrimad Bhagwad Gita from time to time which the author here has tried to do so in very simple words.   
  
Shrimad Bhagwad Gita contains a constitution for the entire world which we should adopt today for the benefit of the future generations. It explains the importance of Karma in today's life. It conveys the true message for the prosperity of mankind. let us all join hands in an effort to enjoy and understand this poetic form of Shrimad Bhagwad Gita.

मुनिवर व्यास ने अठारह पुराण नौ व्याकरण और चार वेंदों का मन्थन करके रचना की महाभारत की | फिर महाभारत रुपी समुद्र-का मंथन करने से प्रकट हुई गीता | और गीता का मन्थन करके भगवान श्री कृष्ण ने उसके अर्थ का सार अर्जुन के मन में डाल दिया | इस अर्जुन का मन मेरा भी है, तुम्हारा भी है-और इस सृष्टि में सभी का हो सकता है यदि हम इसके भाव को अपने जीवन में धारण कर सकें   
  
श्री कृष्ण की यह दिव्य वाणी सागर मंथन से प्राप्त हुआ अमृत है | इस अमृत की एक बूंद इस दुरूह जीवन का कल्याण कर सकती है| विश्व कल्याण की बात, देश कल्याण की बात, समाज कल्याण की बात और उस उस बात को स्थापित करने के लिए बहुत सी बहसों की भी आवश्यकता न पड़े, यदि मानव में गीता का ज्ञान प्रकाशित हो जाये सब अपने -अपने स्वधर्म - कर्म को समझ कर लोकहित में रक्त हो जाये | लोकहित का भाव मन में होगा तो अपना कल्याण स्वयम हो जाएगा | लोकहित का नियम समाज के कर्ण धारों से चलकर आम व्यक्ति तक पहुंचे तो दूसरे के कर्मो की दुहाई देने की बात कहाँ रह जाएगी इस दुरूह बन रहे जीवन की हर जटिल समस्या का समाधान छिपा है गीता में आज एक नए रूप में गीता गया की आवश्यकता है इस समाज को इस गीता ज्ञान को सरल शब्दों में पिरोने का प्रयत्न हुआ है | श्री कृष्ण के भाव, श्री कृष्ण के शब्द आक की भाषा में निरुपित करने की चेष्टा की गयी है|   
  
गीता में समग्र विश्व के लिए एक नया संविधान छिपा है | भक्तिभाव से अधिक लोकहित हेतु समर्पित कर्म भाव की प्रधानता है | मनुष्य मात्र की समृधि इस गीता के ज्ञान में छिपी है | श्री कृष्ण भाव सभी जाने , मन में आई हर शंका को पहचाने | आइये गीता की इस कविता के मर्म को समझने का प्रयत्न करे |

**GITA DHARM**

श्री कृष्ण मेरी तुम्हारी आत्मा है | अर्जुन है मन, मन में आए हर संशय का श्री कृष्ण ने किया निवारण | ज्ञान योग का साधन अपनाकर भक्ती भाव मन में अपनाकर कर्म योग की साधना से साधन बताया एक नए समाज का | राह सुझाई एक उन्नत समाज की | एक धर्म निरपेक्ष समाज की संरचना में अर्जुन को भारत कह एक सर्वधर्म युक्त समाज के निर्माण की नींव रखी | वह एक विश्व एक भारत के निर्माण का स्वप्न जो युगों-युगों से निहित है इस गीता शास्त्र में, वह ज्ञान जो लुप्त प्राय: हो चला है या फिर अपनी-अपनी विचार धारा से मूल भाव को भूल मानव वर्ण भेद को आधार स्तम्भ बनाकर नए सिरे से, एक नए भाव को रच रहा है | जो गीता भाव से विपरीत है | यह वर्ण भेद न कभी था, न कभी इसका वर्णन किया श्री कृष्ण ने | श्री कृष्ण ने कर्म के अनुसार, भावनाओं के आधार पर अपने ज्ञान से अपने संस्करो से सभी कर्मो को सभी धर्मो को एक समान देखने का सपना लिया था | वर्ण भेद केवल कर्म का मर्म समझाने के लिए किया था | न कि वर्ण भेद पर आधारित किसी समाज के निर्माण को कहा था | शरीर की संरचना को समझा कर समाज के प्रत्येक अंग का निरुपण किया था | एक नए भारत के निर्माण में यदि गीता का ज्ञान हम संचालित कर लें तो यह वर्ण भेद, यह समाज में फैल रहे हम वर्ण-धर्म भेद के राक्षस से हम सरल भाव से, सरल ज्ञान से पीछा छुडा पाएंगे | हम एक नए भारत की एक नए समाज की रचना कर पाएँगे | आओ! गीता की इस कविता का महत्व समझ कर, आओ! इस धर्म भेद की दीवार तोड कर हम गीता-धर्म की राह अपनाएँ, एक नए समाज की नींव रखें | जो भारत कहलाए जो सब धर्मो की नींव पर टिका, कर्म योग के माध्यंम से नई दिशा को अग्रसर हो | नए देश के निर्माण में हम सब अपना योगदान दें | श्री कृष्ण विश्वरुप है | समग्र विश्व यह उन्हीं के रुप में समाया है | और गीता-शास्त्र में निहित वचन किसी एक धर्म-समुदाय को नहीं सर्वधर्म युक्त भारत वर्ष को नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में रचे-बसे समस्त धर्मो को एक नई दिशा प्रदान करते है | आओ! हम सब एक विश्व एक मानव-धर्म को साकार रूप से देखने का प्रयत्न करें |

**GITA NIRMAN**

मुनिवर व्यास ने अठारह पुराण  
नौ व्याकरण और चार वेंदों का  
मन्थन करके रचना की महाभारत की |  
फिर महाभारत रुपी समुद्र-का  
मंथन करने से प्रकट हुई गीता |  
और गीता का मन्थन करके  
भगवान श्री कृष्ण ने उसके अर्थ का सार  
अर्जुन के मन में डाल दिया |  
इस अर्जुन का मन मेरा भी है,  
तुम्हारा भी है-और इस सृष्टि में  
सभी का हो सकता है यदि हम  
इसके भाव को अपने  
जीवन में धारण कर सकें |  
  
राजसूय-यज्ञ का आयोजन  
किया पाण्डवों ने,  
महान एश्वर्य देखकर उनका  
दुर्योधन जल उठा |  
तब शकुनि मामा से मिल कर  
उसने रचा एक षडयंत्र |  
जान युधिष्ठर की लत को  
जुए का भेजा निमन्त्रण |  
चली चाल शकुनि की  
कोई न भांप सका  
लुट गया सारा राजपाट -  
द्रौपदी भी लुटा बैठा |  
  
समझाया-बुझाया व्यर्थ गया  
हठ पर दुर्योधन अडिग रहा |  
तब निश्चय हुया वनवास का  
- एक जाल बुना  
- षडयंत्र रचा  
बारह बरस वनवास दिया  
न केवल युधिष्ठिर  
नकुल, भीम, अर्जुन, सहदेव,  
द्रौपदी को वनवास मिला|  
शर्त तेरहवे वर्ष की  
और कठिन थी  
करना था अज्ञातवास  
न खोज सके कोई  
न खबर लगे किसी को,  
तब जाकर राज्य मिलेगा  
दुर्योधन ने स्वांग रचा  
तेरह वर्ष बाद  
कौन किसकी परवाह करेगा|  
  
कष्ट झेलते बीता वनवास  
अज्ञातवास का न भेद खुला,  
- लौट नगर जब आए पाण्डव  
दुर्योधन ने मुहं फेरा |  
न कोई कसम, न वायदा मेरा,  
अब कौनसा राज्य पाण्डवों का ?  
- धर्म-अधर्म की बात नहीं,  
जो जीता है- वह मेरा है,  
मरते दम तक मेरा रहेगा  
पूरे राज्य की बात दूर की है  
सुइ भर का राज भी नहीं मिलेगा |  
बात बडी, कुछ ने समझाया  
- कुछ ने भड्काया  
युद्ध का निर्णय हुआ  
महाभारत का बिगुल बज उठा |  
  
रण-निमन्त्रण देने  
दुर्योधन जब द्वारिका पहुंचा,  
- कृष्ण तब सो रहे थे |  
बैठ गया उनके सिरहाने,  
तभी अर्जुन भी आ पहुंचा,  
शालीनता थी मन में  
हाथ जोड, नतमस्तक  
चरणों में पडा रहा |  
  
श्रीकृष्ण की लीला थी यह  
श्रीकृष्ण सब जानते थे;  
- आँख खुली देखा अर्जुन,  
दायें मुडे देखा दुर्योधन  
- आने का पूछा प्रयोजन |  
दुर्योधन बोला तब पहले,  
'हम दोनों संबंधी आपके  
दोनों से सम प्रेम भाव |  
मैं आया पहले  
अधिकार मेरा पहला  
- सहायता चाहता हूँ  
युद्ध में,  
ईच्छा मेरी पूर्ण करो |'  
  
श्रीकृष्ण की लीला-  
कुछ सोचा,  
मीठे से बोल  
मीठी-सी हँसी-  
'आंख खुली  
देखा अर्जुन,  
चाहे तुम पहले आए  
-दोनों को मिलेगी सहायता,  
पर पहला हक अर्जुन का |  
एक ओर नारायणी सेना,  
दूसरी ओर मैन स्वयं खड़ा |  
न युद्ध करुँगा, न शस्त्र लूंगा |  
-पहल अर्जुन तुम्हारी  
जो चाहे माँग लो |'  
हाथ जोड़ अर्जुन तब बोला,  
' न सेना चाहिए मुझे  
न शस्त्र पाने की इच्छा मेरी,  
मुझे मेरा नारायण मिले-  
मुझे आपका साथ मिले |'  
  
मुंह मांगी मिली मुराद  
दुर्योधन की लौटी सांस-  
सेना पाने को ललायित था  
पाकर सेना झूम उठा  
भाग्य देखो दुर्योधन का  
नारायण को छोड़  
नारायण की सेना को पाया,  
आशीर्वाद भूल श्री भगवन् का  
हस्तिनापुर मद् में लौट गया |  
  
तब श्री कृष्ण अर्जुन से बोले,  
'मैं युद्ध नहीं करुंगा  
मै शस्त्र नहीं लूंगा  
फिर क्यों मुझको स्वीकार किया?  
विजय के लिए मुझसे क्या मिलेगा?'  
नतमस्तक हो तब अर्जुन बोला,  
'तुम सर्वपालनहार  
तुम सबके रक्षक,  
नारायण सारथी मुझे मिला  
उद्धार मेरा स्वंय होगा |'  
  
नारायण की भी यही थी ईच्छा ,  
तभी अर्जुन का साथ दिया,  
महाभारत के धर्म युद्ध में  
गीता का उपदेश दिया |  
'' जो होनी है, वो अवश्य होगी,  
होनी को न कोइ टाल सकेगा  
-इस सर्वनाश को होना है  
कोई इसको न रोक सकेगा |  
अधर्म का नाश अब होगा |  
धर्म की विजय होगी-  
धर्म का रक्षक अब राज करेगा |'  
बोले ॠषि वेदव्यास  
राजा धृतराष्ट्र से |  
  
-'दे सकता हूं तुम्हे दिव्य दृष्टि  
युद्ध देख सको स्वंय नेत्रों से !'  
'कुल का हत्याकाण्ड देखना  
मेरे वश की बात नहीं-  
हां, जि

**अर्जुन विषाद योग**

'हे संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में

युद्ध इच्छा युक्त मेरे पुत्रों ने

पाण्डु पुत्रों ने क्या किया?'

कहा उत्सुक धृतराष्ट्र ने |

संजय बोला,

'देख विचित्र व्यूह रचना

सजग खड़ी पाण्डव सेना की,

जाकर धीर अधीर दुर्योधन,

आचार्य द्रोण से बोला ये वचन,

'हे आचार्य! देखो, पाण्डव विशाल सेना को,

देखो, बुद्धिमान द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न को,

देखो, विचित्र व्यूह रचना को

बड़े-बड़े महारथी खड़े है

अर्जुन-भीम सम वीर खड़े है

शूरवीर सात्यकि,

महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान

पुरुजित, कुन्ति भोज, मनुश्रेष्ठ शैव्य,

काशीराज बलवान |

युधामन्यु पराक्रमी

उत्तमौजा बलवान |

शुभद्रा पुत्र अभिमन्यु खड़ा है

प्रतिविन्धय सुतसोम,श्रुतकर्मा,

शतनीक और श्रुतसेन

पाँचो पुत्र द्रौपदी के

भी महारथी हैं!'

'हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, पक्ष अपना भी सक्षम है

आप स्वयं

पितामह भीष्म

कृपाचार्य संग्राम विजयी और कर्ण

अश्वत्थामा, सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा

और विकर्ण-

मेरी विजय को, मेरे साथ को

आशा जीवन की त्याग और भी,

तलवार-गदा-त्रिशूल लिए

रण में बहुत से शूरवीर खड़े हैं |

हमारी सेना शस्त्र सुसज्जित

रण कला कुशल

शस्त्र-शास्त्र निपुण

अजेय भीष्म पितामह रक्षित,

जीत सुगम है

बलशाली भीम रक्षित

पाण्डव सेना पर !'

'शूरवीरों से अपने

आग्रह मेरा,

डटे रहो अपने मोर्चे पर

भीष्म पितामह की कुशलता को!'

दुर्योधन तब हर्षित हुआ

वृद्ध पितामह कौरव सेना के

भीष्म ने जब

सिंह-गर्जन से शंख बजाया,

चारों ओर शंख बजे,

नगारे, नरसिंघे, मृदंग बजे,

बहुत भयंकर नाद हुआ

युद्ध का बिगुल बज उठा !

श्वेत घोड़ों से युक्त

रथ के सारथी, ॠषिकेश स्वंय

और धनन्जय अर्जुन

भी युद्ध को उद्यत हैं

श्री कृष्ण ने पान्चजन्य,

अर्जुन ने देवदत्त शंख बजाया,

भीमकर्मा-वृकोदर भीम ने

पौण्ड्र नामक महाशंख बजाया!

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने

अनन्त विजय,

मणिपुष्पक सहदेव ने

और

नकुल ने सुघोष नाम का शंख बजाया!

श्रेष्ठ धनुषयुक्त काशीराज

महारथी शिखण्डी,

धृष्टद्युम्न, राजा विराट,

अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद

महाबाहुधारी शुभद्रा पुत्र अभिमन्यु

और

द्रौपदी के पाँचो पुत्रों ने भिन्न-भिन्न

शंख बजाए,

भयंकर नाद हुआ,

आकाश सारा

पृथ्वी सारी

गूँज उठी

तब महाराज धृतराष्ट्र आपकी सेना

बलशाली दुर्योधन की सेना के हृदय

विदीर्ण हो उठे !

संजय युद्ध स्थल देख रहा था,

भयंकर शंख ध्वनि सुन रहा था |

राजा धृतराष्ट्र से फिर बोला,

'हे राजन!

कपिध्वज अर्जुन ने धनुष उठाया

शस्त्र चलाने का समय हुआ तब,

धृतराष्ट्र-सम्बन्धी देख सभी,

बोला वह ॠषिकेश से तब,

'हे अच्युत!

दोनों ओर की सेना के बीच

ले चलो मेरा रथ !

देख सकूँ

युद्ध अभिलाषी,

विपक्षी योद्धाओं को,

देख सकूँ

योग्य कौन जिनसे मैं युद्ध कर सकूँ !

देख सकूँ

दुर्बुद्धि दुर्योधन का हित

कौन हैं चाहने वाले राजा |

देख सकूँ

कैसे साथी

कैसी है उनकी साज-सज्जा!'

-निद्रा पर जिसने विजय पायी,

उस गुडाकेश अर्जुन

को निमित्त बनाकर

ॠषिकेश के मन की बात

अर्जुन की वाणी में आयी,

कुटुम्ब स्नेह अर्जुन के

अन्त:करण से बाहर आया |

रथ को हाँक श्री कृष्ण ने

कौरव सेना के बीच

ला खड़ा किया |

सामने भीष्म, द्रोणाचार्य

खड़े थे,

पिता तुल्य राजा थे,

पितामह-प्रपितामह,

गुरु-भाई-पुत्र-पौत्रों

मित्र-सुह्रिदों को देखा,

'देख, अर्जुन देख !

सभी स्वजनों को देख

सभी तुम्हारे कुटुम्बीजन हैं |'

भगवन् के इन शब्दों से

अर्जुन के मन करुणा आई

यही चाह रहे थे श्री कृष्ण,

गीता की

मधुर धार ऐसे ही क्या होती उत्पन्न ?

करुणा जनित कायरता

वीर-स्वभाव से ऊपर आई

बोला अर्जुन,

'हे कृष्ण,

मेरे अंग शिथिल,

मुख सूख रहा,

शरीर मेरा अब काँप रहा,

मन भ्रमित हुआ

जल रही त्वचा

गिर पड़ेगा देखो !

गाण्डीव धनुष मेरा !

लोक हित यह कैसा होगा ?

स्वजनों को मार क्या कल्यान होगा ?

यह विजय नहीं अब चाह्ता,

यह राज-सुख किस काम का ?

धन-जीवन की आशा त्याग

मेरे समक्ष खड़े सब स्वजन

सभी युद्ध को उद्यत हैँ |

कैसा यह युद्ध,

कैसा सुख यह

किस काम का ?

यह सुख-कामना

किसके लिए ?

पृथ्वी का राज्य

किसके लिए ?

'राज्य-लोभ से युद्ध की इच्छा

मैंने की

सबने की है,

त्रिलोकी होकर भी

युद्ध उपरान्त क्या बच पाएगा ?

यह भाई-बन्धु तब नहीं रहेंगे

मै स्वंय तब नहीं रहूँगा

यह सच है

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन

है आततायी-

आग लगाने वाला,

विष देने वाला,

शस्त्र लेकर निशस्त्र को मारने वाला,

धन हरण करने को उद्यत

राज छीनने वाला,

परस्त्री हरण करने को आतुर,

ऐसे को मारना पुण्य,

फिर भी मैं सबसे बड़ा

पापी कहलाऊँगा

कुल का नाशक बनकर

कैसे राज्य सुख ले पाऊँगा !'

'लोभ से भ्रष्ट हुए राजा

कुल नाश से उत्पन्न दोष

मित्र-विरोध में पाप नहीं देखते,

हे जनार्दन !

कुल नाश से उत्पन्न दोष

जानने वाले हम लोग

पीछे क्यों न हट जाए ?

हम युद्ध न करें

हम यह पाप न करें !'

'कुल के नाश से

सनातन कुल-धर्म नष्ट हो जाएगा,

कुल-नाश से

पाप ही पाप नज़र आएगा |

स्त्रियाँ दूषित हो जाएँगी,

मर्यादा का मूल्य नहीं होगा |

पर-पुरुष की कामना होगी,

वर्णसकंर सन्तान होगी |

कुलघाती नरक के वासी होंगे

श्राद्ध-तर्पण से वंचित होंगे

नष्ट हो जाएगा कुल-धर्म

नष्ट हो जाएगा जाति-धर्म !'

'जानकर भी दुष्परिणाम

हम बुद्धिजीवी

युद्ध को उद्यत हैं

राज्य लोभ

सुख भोगने की लालसा

स्वजनों को मारने को उद्यत हैं'

मुझ शस्त्र रहित को अब,

धृतराष्ट्र पुत्र शस्त्रों से मारें

यही कल्याणदायक है |'

'हे राजन् !'

राजा धृतराष्ट्र से

संजय ने कहे ये वचन-

'रण भूमि में

विषाद मग्न अर्जुन

धनुष-बाण त्याग

रथ के पिछ्ले भाग में अब बैठ गए है |'

**2)** **सांख्य योग**

करुणा से डूबे अर्जुन को देख

मधुसूदन ने तब वचन कहा,

'यह असमय मोह किस काम का,

श्रेष्ठ पुरुष हो तुम अर्जुन,

कातर भाव क्यों आन खड़ा ?

पृथा पुत्र अर्जुन कैसे दुर्बल-चित हुआ ?

नपुंसक बने क्यों खड़े हुए,

न मोक्ष तुम्हें मिल पाएगा

न कीर्ति तुम्हें मिल पाएगी

धर्म-अर्थ सब दूर हो जाएगा |'

हाथ जोड़ अर्जुन तब बोला,

'हे मधुसूदन !

हे अरिसूदन !

ब्रह्मा से तुलना गुरुजन की

विष्णु से तुलना गुरुजन की,

गुरु से कहे कठोर वचन

महापापी बनाते

तब कैसे बाण प्रहार करुंगा?

भीष्म पितामह

गुरु द्रोणाचार्य के विरुद्ध मैं कैसे लडूँगा ?

वे दोनों पूज्यनीय मेरे

और बहुत से महानुभाव है |

भिक्षा लेकर मैं जिऊँगा

पर गुरुवर से युद्ध न करूँगा |'

'गुरु हत्या कर क्या मिलेगा?

न मुक्ति होगी

न धर्म सिद्धि

रक्त सना हुआ अर्थ होगा

कामरुप तुच्छ भोग मिलेगा

ऐसा पाकर क्या करूँगा?

हे कृष्ण! मैं युद्ध न करूँगा

हे कृष्ण! मैं युद्ध न करूँगा |'

'धृतराष्ट्र पुत्र समक्ष खड़े हैं,

आत्मीय जन वे मेरे हैं,

युद्ध श्रेष्ठ या

युद्ध न करना,

वे जीतें या

हम जीतें,

उन्हें मारकर

हम जी न सकेंगे |

ऐसे में मैं युद्ध न करूँगा |

युद्ध न करूँगा |

भिक्षा दो मुझे धर्म की

भिक्षा दो मुझे साधन की |'

'मैं क्षत्रिय धर्म

से दूर हटा,

शौर्य, वीर्य,

चातुर्य, धैर्य

साहस-पराक्रम

सब नष्ट हुआ

ऐसे में मुझे

शिक्षा दो

हे नाथ, अपनी शरण में लो !'

'हे कृष्ण !

देवता आधीन हों मेरे

निष्कंटक राज्य हो मेरा

सुख-साधन सब जुटा कर भी

ऐसा उपाय नहीं पाऊँगा

जो आत्म सुख मुझे दे सके |

ऐसे ही मैं जी लूँगा,

हे कृष्ण! मैं युद्ध न करूँगा |

हे कृष्ण! मैं युद्ध न करूँगा |'

अन्तर्यामी श्री कृष्ण

ने समझा,

यही वह अर्जुन जो

उत्साहित था,

यही वह अर्जुन जो

साहस भरा

रथ में बैठा था,

दोनों सेनाओं के बीच

खड़ा अब व्याकुल है

शिक्षा की भिक्षा पाए

बिना

शस्त्र त्यागने को उत्सुक है |

ऐसे में मीठि-सी हँसी

और कहे ये वचन

'हे अर्जुन!

कैसी दुविधा में पड़ा तू,

शोक करने जो योग्य नहीं

उनका शोक मनाता है

बात ज्ञान की करता है

ज्ञानी तो न जीवित का

न निर्जीव का शोक

करते है!

यह आने-जाने क चक्र

बना रहेगा

मैं हर काल में था

तू हर काल में था

ये राजा सदैव रहे हैं

और

हर काल में रहेंगे

मैं भी आता रहूँगा

तू भी आता रहेगा

नश्वर शरीर को छोड़

हम फिर से उदित होंगे |

हम बार-बार जन्म लेंगे |'

'यह जीवात्मा

वर्तमान देह में

बालपन, जवानी,

वृद्धावस्था पाएगी

और फिर लौट कर

नया शरीर पाएगी |

फिर से आ जाएगा बचपन,

फिर से आ जाएगा लड़कपन |

मोह त्याग हे अर्जुन !

मोह त्याग हे अर्जुन !

अब मोह काम नहीं आएगा |

अब वीर पुरुष ही जीतेगा |'

'हे कुन्ती पुत्र!

सहन कर

सर्दी-गर्मी को,

सहन कर

सुख-दु:ख को |

राग-द्वेष

हर्ष-शोक

मन से उत्पन्न

विनाशशील यह भाव,

इस भाव को त्याग |

तू पुरुष श्रेष्ठ!

दु:ख को देख मत घबरा,

सुख में मत लिप्त हो जा,

व्याकुलता त्याग, हे धीर पुरुष !

तभी तृप्त हो पाएगा |

तभी मोक्ष तू पाएगा |'

'सत् की सता एकरस,

अखण्ड रुप है सत् का

सत् निर्विकार |

असत् परिवर्तनशील

न आकार कोई,

न रुप कहीं किसी काल में |

न पहले था,

न आगे कभी होगा |

इस जड़ वस्तु के नाश से,

इस असत् के विनाश से

क्या तुम्हारा नाश होगा ?'

'नाश रहित तू नहीं

नाश रहित मैं भी नहीं |

अविनाशी का विनाश करे जो

ऐसा कोई समर्थवान नहीं |

सम्पूर्ण जगत

व्याप्त है जिसमें,

वही नाश रहित तू जान |

यह नाश रहित,

अप्रेमय

नित्य स्वरुप जीवात्मा

सदा पाती

नाशवान शरीर

आत्मा एक,

शरीर अनेक

अज्ञान ही भेद कराता

आत्मा से |'

'हे ज्ञानी पुरुष !

आत्मा को अलग मान

विरक्त मान नश्वर शरीर से |

हे भरतवंशी अर्जुन!

तू युद्ध कर

तू युद्ध कर !

मरना-मारना जिसको तुम कहते

वियोग है वो,

मन बुद्धियुक्त स्थूल शरीर से

सूक्ष्म शरीर का वियोग मान |

यह सूक्ष्म शरीर,

यह आत्मा

न तो किसी को मारता है,

न ही यह मर जाता है |

यही तुम्हारा सत्य है |

यही जीवन है

यही जीवन है |'

'उत्पत्ति

अस्तित्व

वृद्धि

अपक्षय

विनाश

यह विकार-यही जीवन!

आत्मा तो न जन्मता है

न मरता है,

यह अजन्मा, नित्य

सनातन और पुरातन है |'

'हे पृथा पुत्र अर्जुन!

आत्मस्वरुप के यथार्थ को जान

आत्मा को नाशरहित,

नित्य, अजन्मा और अव्यय मान |

तब कह तू कैसे किसे मरवाता है

और कैसे किसे मारता है?'

'आत्मा वही करती

जो तुम करते हो

वस्त्र बदलते हो नित्य,

नए वस्त्र धारण करते हो

यह जीवन-चक्र में

एक शरीर को त्याग

नए शरीर को पाती है |

शरीर अनित्य-साकार वस्तु

आत्मा नित्य-निराकार

न इसे शस्त्र काट सकते

न अग्नि इसे जला पाती

जल गला नहीं पाता

वायु सुखा नहीं पाती |'

'आत्मा अखण्ड,

अव्यक्त

एकरस और निर्विकार,

आत्मा नित्य, सर्वव्यापी

अचल, स्थिर और सनातन |

आत्मा अचिन्त्य है,

यह विकार रहित,

इसे जानकर भी तू शोक करता है ?'

'हे महाबाहो |

आत्मा यदि नश्वर ही मानो तुम

यदि जन्म के साथ जन्मने वाली

मरने के साथ मरने वाली

तब भी शोक करने का कारण नहीं

ऐसा मानने वाले भी

मानते है

जन्मे हुए की मृत्‍यु निश्चित,

मरे हुए का जन्म निश्चित |

यही जीवन का नियम समझ

फिर शोक करने का अर्थ नहीं है |'

'हे अर्जुन!

जन्म से पहले तुम

अप्रकट रहे,

मरने के बाद

अप्रकट हो जाओगे,

बीच में ही प्रकट हो

ऐसे में भी शोक करते हो!'

'जिसको तुम अपना मान रहे

वे जन्म से पहले अप्रकट रहे

वे पुन: अप्रकट हो जाएंगे |

ये न तुम्हारे है

न तुम इनके हो

ये अप्रकटता से आए है

ये अप्रकटता में जाएँगे |'

'आत्मा आश्चर्यमय

विलक्षन प्रतिभा जी जान सके,

इसका वर्णन आश्चर्य युक्त,

इसका श्रवन आश्चर्य युक्त

ब्रह्मनिष्ट पुरुष ही जान सके |

अज्ञानी सुनकर न समझ सके |

आत्मा एक है

इसका भेद नहीं

मुझमें भी वही

तुममें भी वही

सब में वह व्यापी है |

शरीर भेद तुम जानों

यह आत्म भेद नहीं |

यह कट नहीं सकती

यह नश्वर है,

अविनाशी है

तब शोक क्यों करते हो,

भयभीत क्यों होते हो ?'

'यह धर्ममय युद्ध है,

लोभयुक्त नहीं |

अनीति के विरुद्ध

यह क्षत्रिय धर्म,

यह धर्म है तुम्हारा |

कल्याणकारी

कर्तव्य है तुम्हारा |

धर्ममय युद्ध तुम्हें

मोक्ष दिलाएगा,

भाग्य समझो अपना

जीवन को यही

सार्थकता दिलाएगा |'

'धर्मयुद्ध से हटकर तुम

स्वधर्म, कीर्ति को खोकर

पाप को ही पाओगे,

अनन्त काल तक

अपकीर्ति का तुम्हारी गुणगान होगा |

माननीय पुरुष हो तुम अर्जुन!

ऐसा अपयश तो मरण समान होगा |

'कायर समझेंगे शूरवीर

सम्मान सभी लुट जाएगा |

तुम युद्ध पाप समझ कर त्याग रहे,

वे मानेंगे भयभीत तुम्हें |

बैरी लोग निन्दा करेंगे

अकथनीय वचन कहेंगे

सामर्थ्यवान की असमर्थता

को सब कायरता ही कहेंगे |'

'गाण्डीव धनुष और पौरुषता

को धिक्कार होगा,

युद्ध कौशल की निन्दा होगी |

अर्जुन निन्दा ऐसी

बहुत दु:खदायिनी होगी |'

'युद्ध कौशल दिखा

मर जाएगा तो

स्वर्ग को प्राप्त होगा,

विजयी होगा तो

पृथ्वी का राज्य भोगेगा |

उठ जा अब !

युद्ध का निश्चय कर,

अर्जुन! तू युद्ध कर

युद्ध कर |'

'जय-पराजय

लाभ हानि

सुख-दु:ख सब एक समान,

युद्ध के लिए तैयार हो

न तू पापी

न स्वयं को पापी मान |'

'हे पार्थ!

ज्ञान योग मैं कह चुका

अब कर्म योग सुनाता हूँ |

ममता-आसक्ति,

काम-क्रोध

लोभ से मुक्त होकर जो

समता सहित

वर्ण-आश्रम

परिस्थिति-स्वभाव से

कर्तव्य कर्म का करे आचरण

वही कर्मयोगी कहलाता है |'

'निष्काम भाव का परिणाम

सिद्ध हुए बिना

न नष्ट होता है

और न ही उसका कोई दूसरा फल

हो सकता है |

यह उद्धार करता है

यही उसका महत्त्व है |

पर इसमें समय का नियम नहीं,

न जाने इस जन्म में उद्धार हो

या जन्मान्तर में

पर तेरा हर कर्म वृद्धि को प्राप्त होगा

पूर्ण होकर तेरा उद्धार करेगा |

तभी जन्म-मृत्यु के भय से

तेरी रक्षा होगी |'

'स्थिर बुद्धि की आस्था एक

स्थिर बुद्धि का ईश्वर एक

दृढ़ निश्चय ही से

कर्मभाव सिद्ध होगा,

विवेकहीन विचलित रहेगा,

हित-अहित में फँसा रहेगा

न कर्म उचित कर पाएगा

न उद्धार कभी हो पाएगा |'

'भोग-विलास में आसक्त

मन-मोह अति चंचल,

यह वेद वाणी का गूढ़ रहस्य

'भोग-विलास परम सत्य,

स्वर्ग प्राप्ति परम पुरुषार्थ'

ऐसा माने अविवेकी जन |

बड़ी ही सुन्दर-बड़ी रमणीय

वेद वाणी

चित हर लेती

मनमोह लेती

ऐसे आसक्त

मन गूढ़ रहस्य

से दूर हुआ

मन लिप्त हुआ

भोगों में

ऐसा जन

स्थिर बुद्धि से दूर हुआ |'

'हे अर्जुन |

सत्-रज-तम

तीन गुणों के

कर्म मेल से बनी

यह काया,

भोग-योग और कर्म

यह चलते हैं,

चलते रहेंगे |

इन कर्मो का

इन विषयों का

त्याग नहीं हो पाएगा

हाँ, ममता-आसक्ति और

कामना से रहित मनुष्य ही

ईश्वर को पाएगा |'

'सुख-दु:ख,

लाभ-होनि

कीर्ति-अकीर्ति

मान-अपमान

परस्पर विरोधी,

इन सबके संयोग-वियोग में

सम रहना,

विचलित न होना

मोहित न होना

हर्ष-शोक

राग-द्वेष से रहित रहना ही

रहित होना कहलाता है |'

'जो पूर्ण-ब्रह्म को पाले,

अमृत को चख कर

अपनी प्यास बुझा ले

वह पुरुष-श्रेष्ठ

काहे भटकेगा

जल पाने को,

काहे तड़पेगा

काहे तरसेगा

वह पूर्ण काम को पाएगा

वह नित्यतृप्त हो जाएगा |'

'जो कर्म मिला

उसको निभा,

वही तेरा अधिकार क्षेत्र,

फल की इच्छा

कर्म न करने की आसक्ति

तेरे स्वभाव से नहीं शोभित |

हठ से त्यागा कर्म,

कर्म नहीं कहलाता है |

ऐसा हठ, कर्म-क्षेत्र में नहीं आता है |'

'हे धनन्जय !

आसक्ति त्याग,

सिद्धि और असिद्धि में

समता बना,

राग-द्वेष से दूर हो,

हर्ष-शोक का अभाव बना,

सम रह कर

तू कर्म कर

चल उठ, कर्तव्य निभा

यही समत्व योग कहलाएगा |'

'ज्ञानी कर्म का कर्ता

न माने स्वयं को,

तब फल के त्याग की बात कहाँ?

ऐसे में, हे अर्जुन!

सकाम कर्म निम्न श्रेणी का |

यह क्षणिक दु:ख,

यह क्षणिक कष्ट

नश्वर है |'

'समबुद्धि में उपाय छिपा,

यही आश्रय ग्रहण कर |

कर्म तो बन्धन में बाँधे,

हम कर्म से दूर न हट पाते |

समबुद्धि युक्त कर्मयोगी

कर्मो का कर्ता होकर भी

कर्मो से मुक्त माने स्वयं को,

पुण्य को पुण्य समझ न कर,

पाप को त्याग

लोकहित में जुट जा,

तभी तू कर्म बन्धन से छूट पाएगा |'

'समबुद्धि युक्त ज्ञानी जन

कर्मो से उत्पन्न

फल को त्याग,

जन्मरुप बन्धन से मुक्त

निर्विकार परम पद को पाते है |'

'हे अर्जुन!

जिस काल में बुद्धि तेरी

मोहरुपी दल-दल पार करेगी,

तभी तू देखे-सुने सभी

इस लोक परलोक के

भोगों से वैराग्य को पाएगा |

'हे अर्जुन!

सुख-साधन को विभिन्न रुप,

जो अब माना,

कल और ही रुप,

मन बुद्धि दोनों विक्षिप्त,

मन को समझा,

मन को तू रोक

परम प्रिय परमात्मा में अचल

अटल बुद्धि तू कर स्थिर,

तभी योग को पाएगा

परमात्मा से तभी तेरा मिलन हो पाएगा |'

'अर्जुन जिज्ञासु बना,

ब्रह्मा-विष्णु-शिव के रुप

से नतमस्तक हो बोला,

'हे केशव!

आप समस्त जगत के

सृजन-सरंक्षण और संहार

करने वाले,

सर्वशक्तिमान-साक्षात-सर्वज्ञ

परमेश्वर,

मेरी जिज्ञासा शाँत करो ईश्वर

स्थिर बुद्धि पुरुष का क्या लक्षण ?

मन-भाव युक्त कैसे वचन ?

कैसी अवस्था उसकी,

कैसा उसका आचरण ?'

'हे अर्जुन!

मन में स्थित कामनाओं

के भेद अनेक

वासना, स्पृहा, इच्छा और तृष्णा

अन्त:करण से जो त्यागे

वह पूर्ण पुरुष |

आत्मा से तू तृप्त हो,

आत्मा से सन्तुष्ट हो,

कामना का त्याग नहीं

कामना का अभाव करे जो

वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है

मन उस योगी का

कर्म योग का साधन पाकर

ईश्वर में स्थित हो जाता है |'

'उद्वेग जिसे विचलित न करते,

शस्त्र जिसे न पीड़ा देते

रोग व्यथित न कर पाते,

तिरस्कार, निन्दा न दु:ख देती

दु:ख-सुख में जो सम रहता

वाणी में जिसकी

भय, आसक्ति और क्रोध का अभाव रहता

वह शाँत, सरल, बुद्धिमान पुरुष

स्थिर बुद्धि युक्त मुनिवर कहलाता |

आसक्ति, काम-क्रोध का मूल

ममता ही दु:ख-सुख का मूल मन्त्र

इस दोष से रहित पुरुष

शुद्ध और प्रेममयी होता |

स्थिर बुद्धि पुरुष

शुभ को प्राप्त कर न प्रसन्न होता

अशुभ पाकर न खिन्न होता

वह शाँत रहता

निर्विकार रहता |'

'अंग समेट के कछुआ जैसे

संकुचित हो जाता है,

जो पुरुष मन-बुद्धि को अचल बना

इन्द्रियों को विचलित न करता

परिकल्पनाओं से बाहर रहकर,

कर्म में जुटा रहता,

कल्पनाओं के घेरे से बाहर रहकर, कर्म करता

स्थिर बुद्धि युक्त वही कहलाता |'

'रोग-मृत्यु का भय

विषयों का परित्याग करवाता,

हठ-भय के बल पर

आसक्ति से निवृत मानव

फिर भी न हो पाता |

बार-बार भटकता,

बार-बार वह सोचता,

अन्त:करण न स्थिर होता,

ऐसे में आसक्ति बनी रहती |'

'परमात्मा का भेद समझ

परमात्मा का दर्शन समझ,

स्थित प्रज्ञ पुरुष स्वयं को

निवृत पाता आसक्ति से |'

'हे अर्जुन!

निवृत होना पर सरल नहीं,

सुख के प्रलोभन,

मन के मन्थन

से निवृत होना सरल नहीं |

यह साधना है,

यह ध्यान मग्न होना सरल नही |

ममता-आसक्ति-कामना

का त्याग कर,

इन्द्रियों को सयंमित कर,

मन केन्द्रित कर

लक्ष्य पर,

बुद्धि होगी तभी स्थिर |'

'विषयों का चिन्तन अब न कर,

विषयों से आसक्ति न कर,

आसक्ति कामना उपजाएगी,

विघ्न पड़ा तो

द्वेष बुद्धि कर क्रोध को उपजाएगी |

क्रोध से मूढ़भाव होगा

स्‍मृति में भ्रम उत्पन्न होगा,

भ्रम बुद्धि का नाश करेगा,

ज्ञान का नाश होगा,

कटुता-कठोरता

कायरता-हिंसा

दीनता-जड़ता

मन में घर कर जाएगी,

मूढ़ बुद्धि को बनाएगी

स्थिरता का पतन हो जाएगा

अपनी स्थिति से तू नीचे गिर जाएगा |'

'स्थिर बुद्धि कर,

साधना से साधक बन,

विषयों के आधीन न हो,

राग-द्वेष से रहित बन,

वश में रख अपना मन,

देख| स्वयं देख

अन्त:करण अपना प्रसन्न |'

'दु:ख का स्वयं अभाव लगेगा,

बुद्धि स्थिर होगी,

स्वयं ईश्वर साकार होगा |'

और ईश्वर क्या है?

मन को प्रसन्न कर जाए जो,

राग-द्वेष मिटा जाए जो,

भूख-प्यास मिटा जाए जो,

दु:ख-सुख कि परिभाषा बदले जो,

एकरस जीवन लगे,

प्रेम-भाव जब बना रहे |

मन न भटके,

तन कभी ना थके,

बस जीवन निर्झर-सा बहता रहे |

ईश्वर जब जीवन लगे |'

'मन की डोर न बाँध सके जो,

इन्द्रियो को वश में न कर पाए,

वह भावनाओं से परे,

भावनाहीन शाँति रहित हुए

सुख की कल्पना भी कैसे कर पाए ?'

'नौका है बुद्धि,

वायु है मन,

और मन में भरी इन्द्रियाँ

इस जीवन समुद्र में

एक ही क्षण,

एक ही तरंग

बुद्धि को भटका देती,

मन को हर लेती |'

'अनादिकाल से हम

भोगों में लिप्त रहे,

आसक्ति हर क्षण बनी रही,

यह स्वभाव बदल पाना,

मन-बुद्धि को विचलित करे जो

उस क्षण का अभाव करना

सरल नहीं

पर सरलता से इसका अभाव करना

ही स्थिर- बुद्धि का गुण है |'

'हम दिन भर क्या करते हैं

भोगों से आसक्त होकर

उन्हें पाने की चेष्टा में मग्न रहते हैं |

प्राप्ति में आनन्द पाते हैं |

ना मिले कभी तो दु:ख करते हैं |

जीवन यह रात्रि समान |

इसे तू अंधकार ही मान |'

स्थितप्रज्ञ योगी इसी आसक्ति से

दूर रहकर

इसी रात्रि में सूर्य की किरणें पाता,

इसी अंधकार में प्रकाशमान रहता |

उसे भोग न विचलित करते

उसे योग ही सब सिखलाता |

उसे तभी ईश्वर मिल पाता |'

'समुद्र अचल है,

नदियों से कितना ही जल

नित्यप्रति आ मिलता,

लेकिन समुद्र विचलित न होता

अपनी मर्यादा में रहता |

ऐसा ही योगी होता है

सब संसारिक सुख-दु:ख

का संयोग-वियोग,

उसे विचलित ना कर पाते

वह निरन्तर अटल,

एकरस स्थिति में रहता |'

'अहम् भाव,

ममता,

अपेक्षा रहित

कामनाओं से रहित हो जाए

वही योगी शाँति को पाए |

और यह शाँतिप्रिय

योगी ब्रह्म को प्राप्त हो |'

'हे अर्जुन! ब्रह्म को पाकर भी

योगी मोहित न होता

बस अपने स्थिर भाव में

जीवन-पर्यन्त कर्तव्य-कर्म में जुटा रहे

ऐसे में ही वह ब्रह्मानन्द को पाए |'

**3)कर्म योग**

'हे केशव!

ज्ञान श्रेष्ठ जब कर्म से,

कर्म नहीं कुकर्म करुँ

ऐसा मुझसे क्यों करवाते?

हे जनार्दन! शरणागत हूँ

क्योँ पाप कर्म में मुझे लगाते?

ज्ञान योग से मन मोह लिया

मैं समझा कर्म निकृष्ट

और

बुद्धि का आश्रय बडा,

शब्दों में विरोध दिखा,

निश्चय कुछ ना कर पाया

बस, मन मेरा मोहित हो गया |

कुछ ऐसे निशिचत वचन कहो,

कल्याण प्राप्त मैं कर सकूँ |'

श्री कृष्ण तब बोले,

'तुम पाप रहित हो, अर्जुन,

सहज ज्ञान तभी सम्भव है

सांख्य योगी अभिन्न माने

आत्मा-परमात्मा को,

ज्ञान योग से साधन करके

देहाभिमान नष्ट करे जो |

कर्मयोगी स्वंय को सेवक माने

सर्वशक्ति, जगतकर्ता

जगतहर्ता, जगत स्वामी का |'

'कर्मयोग का साधक बन

ममता-आसक्ति और कामना

का अभाव करे जो,

सिद्धि असिद्धि समत्व जाने जो

वही कर्मयोगी |'

'कर्मो को आरम्भ किए बिना

निष्कर्मता कैसे मिल सकती,

कर्मो के त्याग मात्र से

सिद्धि भी न मिल पाती |'

'कर्मो में फल-आसक्ति का त्याग करो

कर्मो में कतार्पन का अहम् त्यागो

तभी ईश्वर को पाओगे

कर्मो का सर्वथा त्याग करके

मूढ़-बुद्धि बने रह जाओगे |'

'उठना-बैठना,

खाना-पीना,

सोना-जागना,

सोचना-स्वप्न देखना

ध्यान-मनन,

सब के सब ही हैं कर्म,

श्रण भर ऐसा नहीं कभी

जब कर्त्ता न हो मनुष्य कर्म का |

जब जीवन है

तब कर्म है |

कर्म हमारा धर्म है |'

'मिथ्याचारी वही,

जो बगुला भक्त बना,

बाहर से साधक बनकर,

भीतर ही भीतर ताक में रहता,

चिन्तन में डूबा रहता |

ऐसा मन दम्भी कहलाता |'

'हठ से जो रोके मन को

वह भी, साधक

वह साधना का पहला चरण है

समस्त विहित कर्मो में

लोक-परलोक के समस्त भागों में,

राग-द्वेष का त्याग कर,

सिद्धि-असिद्धि में सम होकर,

यज्ञ-दान-तप,

अध्ययन-अध्यापन्-प्रजापालन,

लेन-देन-व्यापार,

सेवा, धर्म, खान-पान

में जो रत रहता

वही कर्मयोगी

वही श्रेष्ठ पुरुष कहलाता |

हे अर्जुन!

तू कर्म कर

शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म कर |

कर्म श्रेष्ठ है

युद्ध करना अब स्वधर्म क्षेत्र है,

कल्याण हेतु यह युद्ध की हिंसा,

तेरा धर्म है |

तभी जीवन शेष्ठ है

तभी जीवन उत्तम है |'

'अनासक्त भाव से

कर्तव्य रूप से

फल की इच्छा किए बिना

शास्त्रविहित कर्म

बन्धनकारक नहीं होते |'

'स्वार्थ बुद्धि से

शुभ-अशुभ कर्म सभी

साकाम-कर्म श्रेणी में आते

वह निम्न श्रेणी के कहलाते |'

कर्म बन्धन है यह जीवन

मुक्ति की राह

केवल कर्तव्यपालन,

आसक्ति रहित कर्तव्यकर्म |'

'वर्ण,

आश्रम,

स्वभाव,

परिस्थिति के भेद से

यज्ञ-दान-तप

प्राणायाम,

इन्द्रिय-संयम

अध्ययन-अध्यापन,

प्रजापालन,

युद्ध

कृषि-वाणिज्य

और सेवा

यह सब कर्तव्यकर्म,

इन्हीं से सिद्ध हो सकता

स्वधर्म यज्ञ |'

'प्रजापति ने

रचना की स्वधर्म यज्ञ की,

पालन कर इसका ही

मानवता की उन्नति होगी |

पतन कभी ना होगा |'

'जब-जब भेदभाव होगा

अधर्म स्वयं बढ जाएगा,

सब स्वधर्म यज्ञ में

अपने अहम् का जाप करेंगे

तब-तब विनाश होगा |

तब-तब स्वधर्म-यज्ञ का नाश होगा |'

'इसलिए युद्ध तेरा

स्वधर्म क्षेत्र,

यही तेरा कर्तव्य कर्म |'

'यह यज्ञ भूमि

यह कर्म भूमि

नि:श्वार्थ भाव से

कर्म करो

तुम आगे बढ़ो ,

सब आगे बढ़ें,

सब साथ चलें,

एक-दूसरे के साथी बनें |

तुम्हारा स्वयं कल्याण होगा,

परम सुख की

प्राप्ति होगी |

स्वधर्म यज्ञ की

स्वयं विजय होगी |'

'सब एक-दूसरे से बँधे हुए,

सब साथ-साथ ही बढ़े ,

मैं सेवक तुम्हारा,

तुम सेवक मेरे,

कहीं न कहीं

किसी रुप में

रक्षक मैं तुम्हारा,

तुम रक्षक मेरे |

'देवता आधीन ब्रह्मा के

और

दिये सब साधना तुम्हें देवताओं ने,

पशु-पक्षी

औषध-वृक्ष-तृण की पुष्टि कर दी,

अन्न-जल-पुष्प-फल-धातु

सब तुम्हारे भण्डार में भर दी,

उनका भोग करो तुम,

पर साथ चुकाओ उनका ऋण |

ऋण चुकाना सरल बहुत

यज्ञ है यह जीवन

इसको तुम चरितार्थ करो

कुछ पाओ, कुछ दे भी जाओ

ॠण का भार नहीं बढ़ाओ ,

वरना चोर कहलाओगे,

मानव होकर भी, मानव नहीं कहलाओगे |'

'कर्तव्य कर्म ही यज्ञ है,

यज्ञ की साधना करो,

मिला जीवन है,

हर जीवन की आराधना करो |

अन्न को जीने के लिए खाओ |

न कि अन्न

पाने की चाह में,

अन्न खाने कि चाह में,

लगे रहो,

उसे ही जीवन मानों,

उसे ही जीवन जानों,

ऐसा जीवन तो पाप है |

ऐसा तेरा स्वधर्म नहीं |'

'प्राणियों की उत्पत्ति,

वृद्धि-पोषन हो

अन्न से |

अन्न से ही

रज-वीर्य बने,

संयोग से जिसके

प्राणी कि उत्पत्ति |

इसीलिए

जैसा खाओगे अन्न,

वैसा होगा तुम्हारा मन |'

'स्थूल-सूक्ष्म की उत्पत्ति

में जल-प्रधान,

जल का आधार

है वृष्टि |

वृष्टि का मूल-मन्त्र है यज्ञ |

यह यज्ञ-यह कर्मयज्ञ ही प्रधान |'

'कर्तव्य मनुष्य का इस सृष्टि में

बहुत महान

भरण-पोषण-सरंक्षण का दायित्व है,

हित में की हर क्रिया ही

सत्कर्म-यज्ञ कहलाती है |

ऐसे में अन्न से

मन,

मन से कर्म,

कर्म से यज्ञ,

यज्ञ से परमात्मा

को ही साक्षी मान|'

'हे पार्थ!

यह चक्र सृष्टि का

सदा-सदा से चला हुआ |

मानव जो सृष्टि चक्र

में होता प्रतिकूल

कर्तव्य पालन से होता विमुख,

भोगों में ही करता रमण

वह इच्छाधारी होता,

व्यवस्था में सृष्टि की पड़ जाता विघ्न,

पापायु पुरुष का यह जीवन,

जीवन होकर भी

होता मरण

ऐसा जीवन व्यर्थतम् |'

'आत्मा में रमण करने वाला,

आत्मा से तृप्त मानव,

आत्मा में लीन परमात्मा को पाता |

कर्तव्य उसके लिए कोई शेष न रहता |

प्राणी सब साधन

कर ऐसा कर सकते,

प्राणी यह साधना कर

परमात्मा को पा सकते |'

'कर्म भी तभी

कर्म लगता

जब मैं सोचुँ

मैं कुछ कर रहा हुँ |

आत्मज्ञानी तो

ऊपर उठकर इससे

शास्त्रानुकूल कर्म करता |

ऐसे में नियमित बन,

अनुशासन का हो पालन

सुबह-शाम का चक्र चले,

नित्य जीवन आगे बढ़े,

कर्म स्वयं होता रहे,

मन-बुद्धि

हो स्थिर,

आत्मा परमात्मा का

हो स्वयं मिलन

कर्म ऐसे में क्यों लगे कर्म

वही है जीवन!'

'स्वार्थ सम्बन्ध सब

मिट जाते,

कर्म जीवन का न् होता प्रयोजन,

प्रयोजन सब मिट जाते,

जीवन-चक्र स्वयं चलता तब

अहम् भाव मिट जाता तब |

ज्ञानी पुरुष कुछ करके,

या कुछ न करके,

कुछ सिद्ध कर दिखाने की

अवस्था से दूर होता |

ऐसे में कर्म-और्-अकर्म से

उसका वियोग हो जाता |'

'जीवन-चक्र में वह होकर

भी परमात्मा में हो जाता मग्न|

वह स्वयं आनन्दमयी हो जाता|

'ग्रहण' और 'त्याग' का भेद स्वयं मिट जाता |'

'हे अर्जुन!

आसक्ति रहित कर्तव्यकर्म में जुटा रह,

यही भावना तुझे परमात्मा से मिलाएगी |'

'लोकहित परम कर्तव्य,

इसे तू सर्वोपरि मान |

देख स्वयं,

सिद्ध पुरुषों की जीवनचर्या

है दर्पण,

राजा जनक,

भक्त प्रहलाद

और बहुत से महानुभावों के

जान समस्त कर्म |'

'वे सभी

ममता-आसक्ति-कामना रहित थे |

केवल लोकहित में

जुटे रहे,

कल्याण हेतु जुटे रहे मानवता का,

अपने कल्याण का न सोचा कभी

पर स्वयं कल्याण हो गया |

परम आनन्द स्वयं मिलता रहा,

परमात्मा से स्वयं मिलन हो गया |'

'ऐसा कब हुआ?

लोकहित में लगे मानव को

स्वयं भी ज्ञात न हुआ |

सृस्‍टि चक्र में

जुटे हुए,

कब-कैसे क्या चरितार्थ

हुआ,

कब कैसे कल्याण हुआ,

बस, कर्तव्य कर्म

में दिव्य पुरुष जुटा रहा |

बस कर्तव्य कर्म

ही ध्येय रहा |'

'श्रेष्ठ पुरुष तू अर्जुन!

जन-जन करता

श्रेष्ठ पुरुष का अनुसरण

श्रद्धा और विश्वास

बड़ा अडिग,

जैसा राजा-वैसी प्रजा,

एक-सा सबका आचरण |

व्यवस्था को बनाए रखना

तेरा धर्म |

व्यवस्थित चले सब,

लोकहित हो ऐसा ही करो आचरण |'

'हे अर्जुन!

मैं तुमसे वही कह रहा

जो मैं स्वयं करता हूँ |

मेरा क्या है,

सब प्राप्त मुझे,

ऐसा नहीं कुछ जिसको पाने कि इच्छा हो,

मेरा कर्म तृप्त हो गया,

मैं तो लोक संग्रह में जुटा हुआ |

कर्मो में अहम् नहीं,

कर्मो का कर्तव्य नहीं,

पूर्ण तृप्त मिल चुकी,

मगर,

लोक हित है सर्वोपरि |

इसलिए

स्वयं के लिए न शेष कर्म |

फिर भी त्याग नहीं सकता

लोक हित हेतू कर्म |

'मैं निष्क्रिय हो जाऊँ

ऐसा कभी न सोच सकूँ

ऐसा कभी न कर पाऊँ

लोकहित मेरा कर्म बना,

लोकहित ही में जुटा हुआ |

मेरी निष्क्रियता से

सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा |

मैं धर्म-स्थापित करने आया,

मैं कल्याण मार्ग बनाने आया,

धर्म रक्षक बने हुए,

तुम करो इसका अनुसरण,

मानव जाति करे अनुसरण |'

'जब-जब कर्तव्य कर्म

का त्याग होगा,

जब-जब लोकहित से

ध्यान हटेगा,

शास्त्रविहित कर्मो को

जब-जब सब व्यर्थ मानेंगे

जब-जब अपने कर्तव्य

को भूल

लोग दूसरे के कर्तव्य को

अपना अधिकार क्षेत्र मानेंगे

जब-जब अपना कर्तव्य

त्याग,

अपने अधिकारों का जाप करेंगे

तब-तब राग-द्वेष बढ़ जाएगा,

सब निम्न श्रेणी का कर्म करेंगे

स्वार्थ परायण, भ्रष्टाचारी होंगे

सब मिथ्याचारी होकर

आसक्ति-कामना से लिपट-लिपट कर

दूसरे के कर्मो की दुहाई देंगे

न अपना स्वधर्म-कर्म करेंगे

लोक नाशाक बनकर

कर्महीन सब हो जाएँगे

लोकहित में कर्म नहीं होगा

पर सभी

लोकहित की बीन बजाएंगे |

अपने अहम् का विकास होगा,

मनुष्यता का नाश होगा |'

'हे भारत!

देख जरा अज्ञानी जन को,

कैसे आसक्ति से लिपट-लिपट कर,

अपने कर्म में जुटा हुआ,

देख उसकी

ध्यान मग्नता को,

देख उसकी मनन सक्ति को,

ऐसी ध्यान मग्नता

ऐसी ध्यान साधना

ऐसी आसक्ति

लोकहित युक्त कर्म में

लगाए यदि तुझ स ज्ञानी

तो मानवता का कल्याण होगा |

ऐसा ध्यानअ-मनन कितना

उत्तम होगा!'

'सभी संसारिक प्राणी

कर्म में जुटे रहते।

श्रद्धापूर्वक

ध्यानपूर्वक

साकाम भाव से अनुष्ठान करते,

अपने-अपने निहित भाव का

अपने व्यक्तित्व विकास का

करते प्रयास |'

'ऐसे जन को ज्ञान दो,

निष्कामभाव क ज्ञान दो,

पर याद रहे,

शब्दों के संयोग से,

ज्ञान हेतु शब्दों के प्रयोग से,

कुछ संशय उत्पन्न न हो जाए

उनकी श्रद्धा, निष्कामभाव के नाम पर

परित्याग भाव में न बदल जाए

कहीं प्राणी कर्म ही त्याग,

पतन की ओर न बढ़ जाए |'

'ज्ञानी तो शास्त्रविहित कर्म करे,

और ज्ञान दे

आसक्ति और कामना के अभाव का,

और ज्ञान दे

उन्हें पूर्ववत

श्रद्धापूर्वक कर्मो में लगे रहने का |'

'प्रकृति-प्रेरित है सब कर्म,

बुद्धि का विषय निश्चित करना,

मन का विषय मनन करना,

कान का शब्द सुनना,

त्वचा का किसी वस्तु को स्पर्श करना,

आँख का किसी रुप को देखना,

जिव्हा का रस पान करना,

नाक का गंध सूंघना,

वाणी का शब्द उच्चारण करना,

हाथ का वस्तु ग्रहण करना,

पैरों का चलना,

गुदा आदि का मल-मूत्र त्यागना,

यही कर्म है |'

'सब कर्म प्रकृति प्रेरित है |

एक से दूसरा,

दूसरे से तीसरा,

ऐसे ही यह चक्र चलता है

ऐसे एक-दूसरे का

संयोग-वियोग,

भाँति-भाँति के योग बनाता |'

प्रकृति के इन गुणों

को समझकर भी

कुछ अज्ञानी रहते,

इन गुणों से मोहित रहते

इन गुणों में,

इन कर्मो में आसक्त रहते

उनको ज्ञानीजन

विचलित न करे-

ऐसे वचन कभी न कहे

कि कर्म है बन्धन,

मिथ्या है जगत,

शब्दों से

कर्मो के प्रति

श्रद्धा कम हो सकती,

कर्मो से मन हट सकता

अज्ञानी मूढ़भाव को पा सकता

ऐसे में बस ज्ञानी जन

कुछ ऐसे कहे वचन

कि मन

साकाम कर्म से

आसक्ति रहित कर्म में

परिणित हो जाए

अज्ञानी अंधकार

से निकल कर रिशनी में

बस आ जाए |'

'कर्म चक्र तो

चल रहा है,

वह तो तब भी चलता रहेगा

बस ध्येय में

आसक्ति-कामना-का अभाव होगा |

हे अर्जुन!

ईश्वर को

सर्वशक्तिमान,

सर्वाधार,

सर्वव्यापी,

सर्वज्ञ,

परमप्राप्य,

परमहितैषी,

परमप्रिय,

समझकर

अपने अन्त:करण

इन्द्रियों और शरीर

द्वारा किए हर कर्म को

ईश्वर द्वारा किया मान कर,

सब 'उसको' अर्पण कर दे

आशा रहित बन,

संताप रहित बन

ममता रहित होकर

युद्ध कर! युद्ध कर!'

'यह धर्म युद्ध है |

यह अनीति के विरुद्ध है

इससे आसक्ति-कामना

को दूर रख |

जब-जब मनुष्य

सम्पर्ण भाव से

दोष दृष्टि से रहित,

श्रद्धापूर्वक

कर्तव्य कर्म का करे आचरण,

इस कर्मयोगी क पूर्ण हो

जाए अनुष्ठान और

मुक्ति मिल जाए उसे

कर्मो के प्रति कर्ता के मोह से |

कर्मो के प्रति ममता के मोह से |'

'जिसका चित्त दोष भरा,

जिस मानव में है विकार भरा,

जो ईश्वर की इस

जीवन-चर्या को

स्वीकार न करता,

सब स्वयं न होता

सब 'मै करता' कहता

ऐसाअज्ञानीतो

मोहजाल में बंधा हुआ,

हर श्रण विनाश की ओर बढ़े |

यह देह नष्ट हो रही है |

किसको इसकी चिन्ता रहती है?

ज्ञानी तो सोचता भी नहीं इसका

और अज्ञानी

नश्वर शरीर की चिन्ता में

पल-पल मरता

जो पल मिला है

उसे मिलने से पहले ही

खो देता है |

नष्ट होने से पहले ही

नष्ट हो जाता है |'

'सभी प्राणी प्रकृति जनित,

प्रकृति जनित कर्मो में

लीन

जैसे नदियों का जल

समुद्र कि ओर ही रुख करता,

हठ पूर्वक कोई रोक नहीं सकता,

इसी तरह हम सब प्राणी

अपनी-अपनी प्रकृति जनित,

प्रकृति के प्रवाह में

प्रकृति की ओर जा रहे हैं |

हम इस बीच बस प्रयत्न

कर सकते,

धारा-प्रवाह बदल कर

अज्ञान-रुपी बंजर भूमि

को उपजाऊ बना सकते,

अंधकार को प्रकाशमान कर सकते |

ऐसे में हठ से नहीं

प्रयत्न से ही काम चलता |

ज्ञानी पुरुष इसी तरह

लोकहित में जुटा रह सकता |'

'सुनने में,

ज्ञान में,

वाणी में

कर्म में सब ओर

राग-द्वेष छिपे है

जिस वस्तु-घटना-प्राणी में

सुख मिल जाता,

उससे आसक्ति हो जाती

मन रागमयी हो जाता |

जो दु:ख देता,

प्रतिकूल होता

वह द्वेषमयी लगता |

मन-भावना रुप

दु:ख-सुख के भी भेद अनेक |

मेरा दु:ख मेरा है

तेरा वह सुख हो सकता |

मेरा सुख मेरा है

तेरा वह दु:ख हो सकता |

इस राग-द्वेष से

इस सुख-दु:ख की

परिभाषा से

वशीभूत न हो

इस भावना की कामना को त्याग

यह कल्याण मार्ग

की साधना नहीं,

यह लोकहित कर्म

की बाधक है |'

'देख! तू अपना धर्म देख!

देख! तू अपना कर्म देख!

दूसरे का धर्म,

दूसरे का कर्म,

दूसरे का आचरण

मन को करता हो चाहे प्रसन्न,

अपना धर्म अति उत्तम,

अपना कर्म अति उत्तम

लोकहित में जुटा हुआ

मरकर भी कल्याण को पाएगा,

दूसरे की ओर देखता रहेगा,

कर्म से विमुख तो होगा ही,

कायरता बढ़ेगी

और धर्मयुद्ध भयभीत कर जाएगा |'

अर्जुन बोला,

'कौन है जो मन को हर लेता,

बलात्कार से पाप कर्म में लगा देता?

सब प्रकृति जनित तो क्या

पाप प्रेरित मनुष्य भी प्रकृति प्रेरित?

श्री कृष्ण तब बोले,

'राग-द्वेष

ममता-आसक्ति हर इन्द्रिय में

विराजमान,

स्थूल रुप उनका काम और क्रोध

और इन दो में 'काम' ही प्रधान |

काम की उत्पत्ति राग से होती,

और क्रोध की काम से |

'काम' भाव कभी तृप्त न होता,

जैसे घी और लकड़ी से अग्नि-ज्वाला

बढ़ जाती,

उतनी ही काम-वासना से अतृप्ति बढ़ती रहती |

भोगों के प्रलोभन से

विजय पाने की चाह सदा अधूरी रहती |

ऐसे को वैरी ही जान |

हर प्राणी में प्रकाशअ-पुन्ज

उपस्थित जान,

ज्ञान का भण्डार उपस्थित जान |

एकाग्रचित हुए बिना मनुष्य

न देख सके अन्त:करण में छिपा ज्ञान |'

'जैसे धुंए से अग्नि

मैल से दर्पण,

और जेर से गर्भ छिपा रहता,

वैसे काम से ज्ञान

छिपा रहता |

काम से मोहित मनुष्य

निद्रा में स्वप्न देख,

आलस्य भाव से प्रेरित होकर

सुख को भोगों में पाता

काम की तृष्णा बढ़ी रहती,

ज्ञान कोसों दूर रहता |

और काम की आराधना

में जब-जब विघ्न पड़ता,

क्रोध में आसक्ति,

कामना का जोर होता,

मानव उसी

मोहजाल में फँसा रहता |

यह कामाग्नि

कभी न मन्द होती,

ज्ञान का प्रकाश-पुन्ज

काम रुप के मोहपाश

से बँधा रहता,

उसे अंधेरा ही

प्रकाश पुन्ज दिखाता

इन्द्रिय-मन-और बुद्धि में

काम रुप का वास होता,

इसी से मन प्रसन्न,

इन्द्रियां इसी में मग्न

और बुद्धि क यही ज्ञान |'

'हे अर्जुन!

सबसे पहले

तू इन्द्रियों को वश में कर,

काम को नष्ट कर,

बल से-हठ से

आसक्ति-कामना रहित होकर,

काम का नाश कर |

ज्ञान से, विज्ञान से

स्वयं तू

बन्धन स्थापित कर |'

'शरीर रथ है,

इन्द्रियां घोड़े,

बुद्धि सारथी है

आत्मा रथी

और मन लगाम |

विषय सभी जीवन के

इस रथ का मार्ग बने है |

जिस रथी का सारथी

विवेक ज्ञान से शून्य है

ऐसे रथी के इन्द्रिय रुप घोड़े,

उच्छॠंखल होकर

रास्ता भटक जाते

और जबरन ही गड्ढ़ों में

ढ़केल आते |

इसलिए जब तक

मन-बुद्धि और इन्द्रिय पर

तेरा अधिपत्य नहीं है,

तू अपना सामर्थ्य भूला है,

तू इनके आधीन है |

हे महाबाहो!

बुद्धि से

श्रेष्ठ, सूक्ष्म और बलबान

तू आत्मा को जान,

कामरुप दुर्जय शत्रु का नाश कर,

उठ! विजयी हो,

यही कर्म होगा महान |''

**4)ज्ञान कर्म सन्यास योग**

'बुद्धि द्वारा मन वश में करके,

काम रुप दुर्जन शत्रु का नाश करो |

कर्म योग में

आसक्ति-कामना-ममता रहित

निष्काम भाव से लोकहित में जुटे रहो,

'काम' भाव का त्याग करो,

हठ योग या समाधि योग नहीं,

कर्म योग ही प्रधान समझो |'

यह बतलाकर श्री कृष्ण

ने कहे ये वचन-

'यह योग सूर्य ने मुझसे जाना,

सूर्य से सूर्यपुत्र मनु ने,

मनु से राजा इक्ष्वाकु ने

और

तदन्तर सभी सूर्यवंशियों ने जाना |

वेद-विधान के ज्ञाता राजर्षि

राज धर्म में,

करते रहे युगों-युगों तक इसका आचरण |'

'लोकहित

राजवंश का परम धर्म,

लोकहित

जब तक ध्येय रहा,

कर्म योग ही साधन रहा |'

'कहीं कभी किसी काल में,

कोई न कोई

प्रेरणासूत्र राह भटक गया,

कर्म योग से

आसक्ति मार्ग पर चला गया,

धीरे-धीरे यह साधन

लुप्त प्राय: हो गया |'

'भोग में ही

योग सबने देखा,

और

आसक्ति-कामना-ममता

युक्त साकाम भाव

ही 'कर्मयोग' का साधन बना |'

'वेद वाणी लुप्त हो गई |

नए-नए आयाम

स्थापित हुए

लोकहित युक्त

राज धर्म

का बदल गया

स्वरुप |'

यह कर्म योग,

यह ज्ञान योग

यह भक्ति योग

है अविनाशी,

-यह प्रकाश-पुन्ज

सबके भीतर तब भी

रहा विद्यमान,

आज भी सभी में इसका स्वरुप

परन्तु युगों-युगों में बदले

स्वरुप से

लुप्त हो गया इसका ज्ञान |'

'शरणागत होकर,

अन्त:स्थल में व्याकुल होकर,

जिज्ञासा भरी साधना ही,

अधिकार देती है मानव को

ज्ञान प्राप्त करने का |

जबरन कोई किसी को

कुछ नहीं सिखा सकता |'

'युद्ध क्षेत्र में

जिस व्याकुलता से,

जिस अधीरता से

तुमने

शोक से निवृत होने की,

कल्याण-मार्ग को पाने की

जिज्ञासा की है |

तुम परम प्रिय सखा हो

तुम परम प्रिय भक्त हो,

मैनें तुमसे वह योग कहा है,

वही पुरातन योग कहा है,

जो राज धर्म का, लोकहित हेतु कर्म का,

स्त्रोत है ज्ञानमयी प्रकाश पुन्ज का |'

'यह उत्तम रहस्य गोपनीय है

यह गुप्त रखने योग्य है

उसे ही प्रकट करो जो

जिज्ञासु-व्याकुलता से भरा,

तुझसा साधक हो और

लोकहित जिसका धर्म-कर्म हो |'

'व्याकुल अर्जुन तब और हुआ,

शंकाओं से घिरा हुआ,

श्री कृष्ण से फिर बोला,

'सूर्य की उत्पत्ति,

सृष्टि के आरम्भ में,

हुई अदिति के गर्भ से,

जन्म आपका अभी हुआ

फिर कैसे मानूं हे भगवन!

यह कर्म योग क रहस्य

आप ही ने सूर्य से कहा?

मेरी व्याकुलता दूर करो,

मुझे अपना स्वरुप समझाओ |

हे कृष्ण! तुम अपनी सर्वज्ञता का,

जीवों की अल्पज्ञता का रहस्य

समझाओ |'

श्री कृष्ण, तब बोले,

'हे अर्जुन!

मैं और तुम

अभी प्रकट हुए है,

पहले न थे

यह सत्य नहीं है |

हम सभी अनादि-नित्य है |

मेरा नित्य स्वरुप तो है ही

और मै युगों-युगों में,

विविध रुपों में,

मानवता की रक्षा में,

धर्म की स्थापना में,

अब ही नहीं,

पहले भी प्रकट को चुका हूँ |'

'कल्प में मैंने

नारायण रुप में ही सूर्य से

यह योग कहा था

और

अब मै तुमसे यह योग कह रहा हूँ |'

'मै धर्म-स्थापना करने आया हूँ

अर्जुन! तुम मेरा माध्यम हो,

अर्जुन! तुम मेरे प्रिय हो,

यह भाव समझो,

मेरा स्वरुप स्वयं समझ जाओगे |'

'मैं अजन्मा हूँ,

अविनाशी हूँ,

और समस्त जगत का

ईश्वर हूँ,

पर योग माया से

प्रकृति के नियम में

स्वयं को स्थापित करके

प्रकट होता हूँ

प्रकृति में आई विघ्नता

को दूर करने |'

'मैं योग माया के पर्दे मी छिपा,

साधारण मनुष्य-सा प्रकट होता हूँ

अज्ञानी-जन जब मैं आता हूँ

उसे मेरा जन्म,

और जब मैं जाता हूँ

उसे मेरा मरण मान लेते है,

और मैं जब-जब मनुष्य रुप में

लीला करता हूँ

वे अज्ञानी मेरा तिरस्कार करते है

युगों-युगों से ऐसा ही हुआ है

मेरे हर रुप का कहीं न कहीं

तिरस्कार भी हुआ है |'

'मेरा जन्म

दिव्य रुप में

इच्छा भाव से होता है,

कर्म प्रेरित,

प्रकृति स्वरुप से अलग-थलग होता है

मेरे कर्म विलक्षण रहते,

मैं लोकहित भाव से ही प्रकट होता

योग माया से प्रविष्ट होता हूँ

इस सृष्टि की प्रकृति में

और

योग माया से साधन प्रदानकर

ज्ञानी जन को,

योग माया से ही

अप्रकट हो जाता हूँ |'

'हे भारत!

जब-जब धर्म का नाश होता है,

अधर्म का विकास होता है,

तब-तब रुप रचता हूँ,

नई-नई लीलाएँ रचकर,

साकार रुप में प्रकट हो जाता हूँ |'

'अहिंसा-सत्य

और

समस्त सामान्य धर्मो का,

यज्ञ-दान-तप-अध्ययन-अध्यापन

एवं प्रजापालन,

अपने-अपने वर्ण आश्रम का,

अपने-अपने धर्म पालन,

हितकारी-सदाचारी

श्रद्धालु जन का

उद्धार करने,

प्राकृतिक नियम का प्रचार करने,

श्रवण-मनन-चिन्तन

और ममता-आसक्ति-कामना रहित

कर्म का विकास करने,

पाप कर्म में जुटे मनुष्यों का

विनाश करने,

उनके प्रकाश-पुन्ज का

विकास करने,

पथभ्रष्ट को राह दिखाने

मैं युगों-युगों में प्रकट हुआ,

मैं इस युग में अब आया हूँ

मैं युगों-युगों आता रहूँगा

मैं लोकहित में अपना

योग लगाता रहूँगा |'

'हे अर्जुन!

जन्म दिव्य,

सब कर्म दिव्य हैं |

दर्शन, स्पर्श से सुख देकर,

मन आकर्षित करके,

धर्म को स्थापित करने,

जन्म-धारण की लीला मैं करता |'

'मेरे कर्म में अहम् नहीं,

आसक्ति-कामना द्वेष

दोष से मुक्त सभी,

केवल निहीत कल्याण भाव,

केवल नीति-धर्म-प्रेम-भक्ति

का भाव छिपा |'

'मेरे कर्म सब लोकहित समर्पित

तत्व ज्ञान ही प्रधान |

प्राप्त हो जिसे यह ज्ञान,

वह मुझमें ही समा जाता,

वह मुझसे अलग नहीं होता,

वह प्रकृति में प्रविष्ट नहीं होता

न पीछे कहीं जाता है वह,

न ही नयी देह पाता है |

वह मेरी तरह इसी प्रकृति के

कण-कण में विराजमान हो जाता है |'

'राग-द्वेष, भय-क्रोध सर्वथा नष्ट हो जाते,

मेरी प्रकृति के मन रुप में

प्रेम भाव से स्थित हो जाते,

मुझमें वे स्थापित हो जाते

युगों-युगों से यह होता रहा है,

ज्ञान योग से कर्म योग

में मग्न प्राणी,

पवित्र मयी होकर मुझमें ही समा जाता है |

उसका कर्म, कर्म होकर भी

लोकहित में, कर्म से अहम् भाव

निवृत होता है |

उसमें राग-द्वेष, भय-क्रोध

का सर्वथा अभाव हो जाता है |'

'मेरा मैं सर्वत्र व्याप्त,

जैसे जिसने जब-जब मुझको चाहा,

मैं तब-तब वैसे रुप में चला आया,

मैं एक, पर भक्त मानें मेरे रुप अनेक |

मेरी उपासना जो जिस रुप में करता

मैं उसे वैसे ही दर्शन देता हूँ |

जो जैसे मेरा चिन्तन करता,

मैं वैसे उसका चिन्तन करता हूँ |

जो मेरे लिए व्याकुल हो जाता,

मैं उसके मिलन को आतुर होता हूँ |

जो मुझ पर न्यौछावर होता,

मैं सर्वस्व लुटा देता हूँ |'

'ध्यान मग्न होकर,

करो मेरा स्मरण,

मैं वहीं तुम्हें मिलूँगा,

मन जहाँ करोगे अर्पण |

मैं अहम् भाव मुक्त हुआ

प्रेम ही लुटाऊँगा,

तभी तो मेरी महिमा समझोगे

और प्रेम ही फैलाओगे |

जैसा मुझे दोगे,

वैसा ही तुम पाओगे |'

'मेरा ज्ञान कठिन,

कर्म योग है और कठिन,

क्षण भर में कुछ न हो पाता |

न मैं मिलता,

न निष्काम भाव का 'भाव' समझ आता |

मेरी आराधना कुछ भी नहीं

बस, लोकहित कर्म की है,

आसक्ति-कामना-के

समर्पण की है |

ऐसे में मन मुझमें

सभी न लगा पाते

सब देवताओं में ध्यान लगा देते |

वे साधन सब जुटा रहे,

वे ही भण्डार है भरते

बस, यह जीवन

साकाम कर्म,

बस यह जीवन ही 'जीवन',

यह जीवन ही महान धर्म |

जिसने सब साधन दिए,

उसकी आराधना करो,

वही और भी साधन देगा,

वही और सिद्धियाँ देता

हित-अहित की कौन सोचे

सब स्वार्थ सिद्धि की बात सोचें,

और तभी

सिद्धियाँ पाने को,

देव पुरुषों के चरण पकड लें |

वे सिद्ध कर देते सब साधन,

वे सुगाम बना देते यह जीवन |'

'मैं तो कर्मो का कर्ता होकर भी,

प्रकृति में अकर्ता हूँ |

मैनें तो रचना की है,

प्रकृति चक्र की सरंचना की है,

सब कुछ सब है स्वयं चल रहा,

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र

चार वर्ण की कर्म भाव से केवल रचना हुई,

सब एक-दूसरे पर निर्भर,

सब समूह, गुण और कर्मो से

बँधे हुए है

यह मनुष्य एक

यह जन्म एक

सब के धर्म है

कर्मो से बंधे हुए,

मेरा धर्म है स्वकर्म करना,

तेरा धर्म है स्वकर्म करना

अपना धर्म है सर्वोपरि,

अपना कर्म है सर्वोपरि,

फिर कौन कहाँ छोटा किससे?

कौन कहाँ किससे बड़ा?

मैं तुमसे बँधा,

तुम मुझसे बन्धन बाँधें |'

'अहम् भाव ही

हुमें एक-दूसरे से अलग करवाते

ब्राह्मण को क्षत्रिय से

क्षत्रिय को वैश्य से

और वैश्य को शूद्र से

छोटा-बड़ा करवाते |

मेरी प्रकृति में

सब एक समान,

सबके अपने कर्म महान!'

'जो कर्म मिला उसको निभा,

दूसरे के कर्म से,

दूसरे के धर्म से,

अपनी तुलना मत कर |

मेरी प्रकृति में सब

कर्म ही प्रधान,

सभी कर्म लोकहित में एक समान |'

'अहम्, भाव से विरक्त होकर

जो करता यह कर्म,

यह कर्मयोगी कहलाता,

वह कर्म निष्काम भाव से किया

कर्म कहलाता |'

'हे अर्जुन!

मैं जो भी कर्म करता हूँ

वे ममता-आसक्ति

फलेच्छा और कर्तापन रहित,

लोकहितार्थ होते है,

उनसे मेरा बन्धन नहीं होता,

इसीलिए मैं उनमें लिप्त नहीं होता |

बस वह सृष्टि चक्र

के साथ-साथ चलते रहते |

उनका चक्र कभी नहीं टूटता,

बस कभी कर्ता का स्वरुप,

कभी कर्ता का रुप बदल जाता है |

ऐसे में कर्तापन का एहसास

नहीं होता |

ऐसे में कर्तापन का अहम् नहीं होता |

'ऐसे ज्ञानी जन,

ऐसे मनुष्य जो

जन्म-मरण के बन्धन से

मुक्त होकर

परमानन्द स्वरुप में

स्वयं को लीन कर दें,

जो जन्म में पाए भोगों से

विरक्त हो जाएं,

और जो कामना-और आसक्ति

से रहित हो कर

राग-द्वेष से मुक्ति पा लें |'

'वे ज्ञानी जन

वे सभी पूर्वज तेरे,

कर्मो की दिव्यता समझकर

कर्मों का तत्व समझकर

निष्काम भाव से करते थे आचरण |

निष्काम भाव से किए कर्म ही कर्म कहलाते

उठ! वही कर्म निभा |

चल उठ! अपना धर्म निभा |'

'कर्म क्या है?

अकर्म क्या है?

इसका निर्माण भी मोहित करता |

अब कर्म तत्व का ज्ञान समझ,

यह कर्म तत्व ही तुझे

अशुभता का भाव समझाएगा |

जिसे तू अशुभ मान रहा,

उसी कर्म बन्धन से तू स्वयं को

मुक्त पाएगा |'

'कर्म का स्वरुप समझना,

अकर्म की स्थिति को परख पाना

और विकर्मो को अलग कर पाना

कैसे हो पाता,

इस गहन गति को कर्म की

हर प्राणी समझ न पाता |

शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्म का नाम कर्म है,

इतना कह देना सरल बहुत,

आचरण भाव के भेद से,

कर्म स्वरुप में भेद हो जाता

शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्म का नाम

अकर्मता की श्रेणी में आ जाता |'

'शास्त्र तत्व को जाने बिना,

पुण्य को प्राणी पाप,

और

पाप को पुण्य की श्रेणी में पाता |

मेरा कर्म दूसरे के लिए विकर्म बन जाता |'

'शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म

ही कर्म कहलाते,

इन सब में

आसक्ति-फलेच्छा का त्याग करो,

ममता-अहंकार का मूल त्यागो,

तभी ज्ञानी जन कर्म को

अकर्म-भाव से देखता |

कर्म करके भी स्वयं को

कर्मो में लिप्त नहीं पाता |'

'अकर्म में कर्म यानि,

कर्मो का त्याग

कष्ट के भय से नहीं

राग-द्वेष-मोहवश नहीं

मान-प्रशंसा-प्रतिष्ठा वश होकर नहीं,

बल्कि

मुक्त भाव से त्याग में भी

ममता-आसक्ति-फलेच्छा

और अहंकार जिसके आड़े न आता,

वह ज्ञानी पुरुष कहलाता |

वह योग को प्राप्त कहलाता |

कर्म में अकर्म देखकर

और अकर्म में कर्म देखकर ही

वह समस्त कर्मो का कर्तव्य निभा

योगी कहलाता |'

'सभी कर्म जिस योगी जन के

शास्त्र-सम्मत होते,

कामना रहित,

संकल्प रहित होते,

वहां कर्म-अकर्म का भेद न होता,

वहां केवल कर्तव्य भाव होता |

ज्ञानाग्नि की लौ में

भेद सभी मिट जाते

वह महापुरुष ही

पण्डित-पद पाता |'

'जो पुरुष समस्त कर्मो में

लिप्त होकर भी

लिप्त नहीं स्वयं को पाता,

फल में आसक्ति का

सर्वथा त्याग कर देता,

वह स्वयं को

संसारिक होते हुए भी

स्वयं को सभी कर्मो से मुक्त पाता |

उसे न तो आभास होता

अपने कर्म का,

न अकर्म का,

वह तो रम जाता

प्रकृति-प्रेरित

प्रकृति में |'

जिस मनुष्य को

किसी वस्तु को पाने की

आवश्यकता न होती,

किसी भी कर्म से इच्छा न होती,

किसी भी भोग की आशा न होती

जिसने इच्छा-कामना-वासना का

त्याग कर दिया,

वह विजयी पुरुष

अन्तरात्मा में सन्तुष्ट रहता

और यज्ञ-दान-अनुष्ठान

आदि कर्मो का भी अनुष्ठान न करके,

केवल

शरीर्-सम्बन्धी कर्म ही करता,

भूख लगने पर खा लेता,

प्यास लगने पर पानी पी लेता,

'वह भी पापी न कहलाता,

उसका धर्म अकर्म की श्रेणी में न आता |

क्योंकि उसका त्याग

आसक्ति-अहम्-फलेच्छा रहित है |

उसी में कहीं न कहीं इस प्रकृति का हित है |'

'मन-इच्छा रुप पाकर

कुछ आनन्दित होता,

राग बढाकर

और पाने की इच्छा करना

या फिर

मन से प्रतिकूल पाकर

कुछ द्वेष करना,

उसके नष्ट होने की इच्छा करना,

दोनों परिस्थितियों में जो सम रहता

शांत-प्रसन्नचित रहता,

हर्ष-शोक के द्वन्द से

दूर हुआ जो

वह कर्म योगी

कर्म करते हुए भी

स्वयं को बंधा नहीं पाता |

वह मुक्त होता

वह तृप्त होता

वह परम आनन्द को पाता |

वह योगी

आसक्ति-रहित हो जाता |'

'चाह कर भी

जिसे आसक्ति का आभास न होता,

वह देह दम्भ से दूर होता |

न देह की ममता होती,

न होता अनुराग,

ज्ञान योग में जो लीन होकर

मन को पाता जो स्थिर |

जो अपने वर्ण-आश्रम व परिस्थिति

अनुरुप ढल जाता,

जिसमें इस भेद का अभाव हो जाता

बस, जो केवल कर्तव्य कर्म में

जुटा रहता

वही योगी

वही यज्ञ उसे जीवन लगता

उसके सभी कर्म ही

विलीन हो जाते

ऐसे में कर्म-अकर्म

और विकर्म का

विभाजन न हो सकता,

ऐसे में पाप्-पुण्य का भेद क्या रहता?

ऐसे में आसक्ति-कामना-द्वेष

की परिभाषा क्या हो सकती?

ऐसे में बस कर्तव्य कर्म और

लोकहित के अतिरिक्त

सबका सर्वथा अभाव हो जाता!

मन अनुरागी हो जाता |

मन ईश्वर में रम जाता |

कर्ता-कर्म और करण

का भेद नहीं रहता,

वह ब्रह्मं रुप हो जाता |'

'यज्ञ-क्रियाएं

भिन्न-भिन्न होतीं,

लेकिन ब्रह्मं एक रुप वह पाता!

समस्त जगत,

समस्त्-कर्म

और समस्त कारण

एक रुप हो जाते

सब कुछ ब्रह्म

ही नजर आता,

योगी ब्रह्म रूप होकर,

ब्रह्मज्ञानी होकर,

पूर्णब्रह्म को पाता |

'योगीजन वे भी होते,

जो सभी देवताओं का

अनुष्ठान करते,

अपने धर्म से,

अपने कर्म से,

कर्तव्य साधना करते,

ईश्वर-प्राप्ति के लिए

आराधना करते ईष्ट-देवों की

ममता-आसक्ति-फलेच्छा

का अभाव करके |'

'योगी जन वे भी होते

जो आत्मा और परमात्मा

में भेद नहीं करते,

ब्रह्म में लीन रहते

निर्गुण-निराकार्-सच्चिदानन्दघन ब्रह्म

का दर्शन समझ,

अपनी या किसी अन्य की

सत्ता से विलग होकर

कर्माग्नि से कर्म के हेतु

यज्ञ करते |'

'इन्द्रियों, को वश में

करना संयम है |

वश में की इन्द्रियों में

विषयों से आसक्ति,

आसक्ति की शक्ति नहीं रहती |

मन एक ही चिन्तन करता,

निरन्तर लोकहित में जुटा रहता |

मन संयम से कहीं और न भटके,

ऐसा जन भी, कर्म यज्ञ में

संयम से संयमित होकर,

योगी की श्रेणी में आए |'

'वश में की इन्द्रियों से

वर्ण, आश्रम, परिस्थिति

के अनुसार प्राप्त विषयों का चिन्तन,

ग्रहण और कर्म करता,

अन्त:करण में जिसके

दूसरे शब्द न उत्पात मचाते |

संयम से

अन्त:करण के,

जुटा रहता योगीजन,

समाधि में

जाग्रत रहता

विवेक-ज्ञान उसका,

शून्य से दूर रहता ऐसा योगीजन |'

'ध्यान योग में,

ध्येय का मन में

चिन्तन रहता |

चिन्तन से एकाग्रता होती,

और ध्येय भी विलीन हो जाता,

ऐसा योगीजन

आत्म-संयम-योग से

अग्नि में इन्द्रियों व प्राणों की

समस्त क्रियाओं का यज्ञ करता,

ऐसा योगीजन ध्यान योग में मग्न हो जाता |'

'अपने-अपने धर्म से

अपने-अपने कर्म से

न्याय के अनुकूल

ममता-आसक्ति-फलेच्छा से मुक्त होकर,

जो जन द्रव्य अर्जित करता,

लोकसेवा में अर्पित करता

ऐसा जन पूर्ण कर्म भाव युक्त

योगीजन कहलाता |

ग्रहस्थ होकर भी यज्ञार्थ कर्म

की श्रेणी में आता |

ग्रहस्थ से आगे

मन कर्म योगी का और पूर्णता पाता |

मन उसका तपोयज्ञ में

रम जाने को कहता |

ऐसा जन तप करता,

त्याग देता सब सुख,

सहनशील हो जाता,

धर्मपालन में युक्त होकर

मन को तप में कर देता लीन |

इस तन-मन की प्यास सदा

बढ़ी रहती,

इससे ध्यान हटा,

रम जाता लोकहित में

मन योगी का |'

'बहुत योग है,

योगीजन

नित-नई क्रियाएं करते,

अहिंसा व्रत का पालन करते,

कष्ट सहते,

यत्नशील रहते,

स्वाध्याय रुप में

चित्तवृति निरोध में,

ज्ञान यज्ञ में जुटे रहते |'

'दूसरे कितने ही योगीजन

श्वास क्रिया से यज्ञ करते |

प्राण स्थित हृदय में,

अपान स्थित नाभि में,

श्वास बाहर से भीतर करके

अपान गति को नियमित करना,

श्वास से शरीर स्थिर करना,

श्वास क्रिया से मन को संयमित करना,

श्वास के प्रयोग से स्वयं को

प्रकृति में स्थापित करना,

भी यज्ञ श्रेणी में आता |'

'न अधिक खाना,

न उपवास करना,

नियम में बंधकर आहार लेना,

योग सिद्ध होना कहलाता है |

नियमित भोजन,

संतुलित भोजन,

श्वास क्रिया पर हो अनुशासन,

प्राणों को श्वास के बिना,

और

श्वास को प्राणों के बिना

रहने का साधन जो करते,

प्राणायाम की हर विधि का पालन जो करते,

वे योग सिद्ध हो जाते,

पापों का नाश स्वयं हो जाता,

वे योगीजन भी यज्ञ-साधक कहलाते |'

'ज्ञान, सयंम, तप, योग, स्वाध्याय, और

प्राणायाम का अनुष्ठान कर जो

अन्त:करण के शुद्ध पाकर

परम आनन्द का अनुभव करता,

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन!

वह परब्रह्म परमात्मा को

स्वयं ही पा लेता |'

'जो पुरुष यज्ञ नहीं करता,

मन में न संकल्प होता,

मन में न उत्साह होता,

तन जिसका थका रहता,

बस फल पाने को आतुर रहता,

न उसको मिल पाता सुख

इस लोक में,

फिर परलोक के सुख की

कल्पना भी कैसे हो पाती?'

'यज्ञ की प्रकृति है अनन्त,

वेद वाणी में विस्तृत व्याख्या |

यज्ञ है साधना

तू बन साधक इसका |'

'सब अपने कर्तव्यकर्म का पालन

मन-इन्द्रिय और शरीर से करते क्रियान्वित |

किसी क्रिया का सम्बन्ध मन से,

किसी का इन्द्रिय और मन से,

किसी-किसी का शरीर-इन्द्रिय और मन से होता |

ऐसा कोई यज्ञ नहीं होता,

जिसका कोई सम्बन्ध न हो |

यह क्रिया

ममता-आसक्ति-फल-कामना

रहित हो,

तभी कर्मो से मुक्ती मिल पाती |'

'सभी कर्म

मन-इन्द्रिय-शरीर की क्रिया से होते,

आत्मा इससे मुक्त ही रहती,

ज्ञानयोगी की सिद्धि अहम् भाव

से विरक्त होने पर ही हो पाती |'

साधक को साधन बहुत

साध्य को पाने के,

त्याग कर ममता-आसक्ति

अहम्-फलेच्छा

साधक अवश्य सफल हो सकता |

कर्म बन्धन से मुक्त हो सकता |

'हे परन्तप अर्जुन!

सांसारिक वस्तु की प्रधानता जिसमें,

सभी शास्त्रविहित शुभ कर्म कहलाते |

वे सब द्रव्यमय यज्ञ की

परिधि में आते |'

'विवेक

विचार

और

ज्ञान से जो

शास्त्रविहित कर्म करता

वह ज्ञानयोगी कहलाता |

वह यज्ञ में श्रेष्ठता

की उपाधि पाता |

द्रव्ययज्ञ तभी सफल

होगा जब

ममता-आसक्ति-फलेच्छा

का त्याग होगा |

ज्ञान के बिना इनका

त्याग नहीं हो पाता |

इसीलिए ज्ञानयज्ञ ही

श्रेष्ठता की उपाधि पाता |'

'परमात्मा के यथार्थ तत्व

को जाने बिना

कर्म बन्धन से कोइ छूट न पाता |

तत्व ज्ञान का दर्शन

ज्ञानयोगी ही समझा सकता |'

'अर्जुन!

मेरे वचन मन में तेरे घर कर जाएंगे,

यदि तू तत्व ज्ञान को जानने की इच्छा से,

श्रद्धा-भक्ति भाव से,

जब जाकर किसी ज्ञानयोगी से

सरल स्वभाव युक्त,

नतमस्तक होकर जानने का

यत्न करेगा!

वह ज्ञानी जन उपदेश देंगे,

तुझे बताएंगे,

तेरा भेद तुझे समझाएंगे |

तुम क्या हो?

क्या है माया?

कौन है परमात्मा?

बन्धन में किस छोर से बंधी है आत्मा,

परमात्मा से?

मुक्ति क्या? और साधन क्या है?'

'ध्यान रहे

श्रद्धा-भक्ति रहित मनुष्य

कभी ज्ञान नहीं पा सकता |

कपट भाव, दम्भ, उदण्ड़ता भरी बुद्धि

कभी प्रवृत्त नहीं हो सकती

ज्ञान भाव जानने को |

सहज भाव से

तत्व ज्ञान को ग्रहण कर,

तुझे मोह नहीं मारेगा |'

हे अर्जुन!

ज्ञान मिलेगा,

मोह मिटेगा

तुम स्वयं मार्ग दिखाओगे,

अज्ञानी रहकर तुम

वर्तमान में हुई दुर्दशा को

दूर नहीं कर पाओगे |'

लैकिक सूर्य यदि देखो तुम

नित्य अस्त हो जाता है,

नई सुबह होती है,

सूर्य उदय हो जाता है |

लेकिन ज्ञानी जन जानता है

सूर्य अस्त नहीं होता - वह एक

और अस्त होता है

और दूसरी ओर उदय हो जाता है |

तुम पूरब दिशा जिसे समझते,

किसी और के लिए वह पश्चिम है |

तुम जहां खड़े हो,

उसी दिशा ज्ञान को जानते हो |

देखो! ज्ञानी जन इस पार नहीं,

उस पार तुम्हें लगा देगा |

सूरज जो आज उदित हुआ है

तुम्हें कभी अस्त नहीं लगेगा |

यह ब्रह्मज्ञान है सरल बहुत

शाम ढला सूर्य

तुम्हारे लिए शाम है, अंधेरा है |

देखो, दूसरी ओर देखो,

तुम्हारी शाम, किसी ओर के लिए नया सवेरा है!

'तत्व ज्ञान को जान,

आत्मा को सर्वव्यापी मान,

आत्मा का अनन्त स्वरुप समझ,

स्वयं आत्म भाव जाग्रत होगा

वर्तमान और भूत का

भूत और भविष्य का,

वर्तमान और भविष्य का

भेद स्वयं मिट जाएगा |

केवल तत्व ज्ञान ही अभिन्न लगेगा |

और तत्व ज्ञान का बोध

तुझे परमात्मा का दर्शन कराएगा |'

'पापी से बड़े पापी भी मानों

यदि तुम स्वयं को

यह तत्व ज्ञान तुम्हें

इस सम्पूर्ण पाप-जगत से

पार लगाएगा |'

'ज्ञान योग को समझ कर,

स्वयं को इस संसार से

सर्वथा असंग,

निर्विकार,

नित्य और अनन्त मानोगे

और

लोकहित कर्म में जुटे हुए भी,

स्वयं को कर्म बन्धन से

मुक्त मानोगे |'

'हे अर्जुन!

जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि

से सब ईधन भस्म हो जाते,

इस ज्ञान रुपी अग्नि से

सभी कर्म बन्धन मिट जाते |

जगत में स्थापित

यज्ञ-दान-तप-सेवा

व्रत-उपवास-संयम और ध्यान,

कोई नहीं आड़े आता,

समझो यदि तुम यथार्थ ज्ञान |

वे तो बस सब साधन है |

वे पवित्र है!

तत्व ज्ञान तो साध्य है,

तत्व ज्ञान को पाकर स्वयं

राग-द्वेष,

हर्ष-शोक

अहंता-ममता-अज्ञान युक्त विकारों का,

अभाव स्वयं हो जाता है |'

'इस तत्व ज्ञान को,

कर्म योग से

शुद्ध अन्त:करण करके,

मनुष्य स्वयं आत्मा में ही पा लेता है |'

'सृष्टि-नियम में बंधा हुआ मानव,

ज्ञान से, विज्ञान से आलोकित

श्रद्धा-विश्वास में बंधा हुआ,

अवश्य साध्य को पाता है |

परम-शांति का मार्ग स्वयं सरल हो जाता है!'

'विवेक हीनता,

श्रद्धा-भक्ति की अवहेलना

परमार्थ से भटका देती,

पथभ्रष्ट होकर मनुष्य,

संशय-विकारों से घिरा हुआ,

न इस लोक के लिए,

न परलोक के लिए

बस इस देह की चिन्ता में लिप्त

छटपटाता है

सुख उससे मीलों दूर हो जाता है |'

'हे धनन्जय!

जिस योगी ने

कर्मयोग की साधना कर ली,

कर्मो को अर्पण कर डाला,

संशय सब नष्ट हो गए जिसके,

मन को जिसने सयंमित कर लिया,

परमात्मा से ऐसे योगी का मिलन हो गया!

कर्मो के बन्धन से वह स्वयं मुक्त हो गया!'

'इसीलिए हे भरतवंशी अर्जुन!

अज्ञान से प्रेरित

व्याकुल मन में

उत्पन्न संशय का,

विवेक ज्ञान रुपी तलवार से छेदन कर दे |

उठ! समत्व कर्मयोग में स्थित हो जा|

कर्तव्य-कर्म निभा,

उठ! युद्ध के लिए खड़ा हो जा |'

**5)कर्म सन्यास योग**

अर्जुन बोला

'हे कृष्ण!

आकर्षित करते

आनन्द देते

तभी तुम कृष्ण कहलाते |

कभी तुम कर्म-सन्यास की बात करते

कर्तापन का अहम् त्यागने को कहते,

एकी भाव से परमात्मा में स्थित हो,

ब्रह्म दृष्टि रखने को कहते |

ज्ञान योग ही उत्कृष्ट कहते |

क्या कल्याण कारक यह मेरे लिए

या कि निष्काम भाव से

लोकहित अर्पित कर्मो का

सम्पादन है कल्याण कारक?

कौन सा साधन मैं अपनाऊं?'

'दोनों श्रेष्ठ है मेरे लिए,

मैं निश्चित मत हूं चाहता

मेरी राह निश्चित करो

वही जो कल्याण कारक हो |'

'सांख्य योग और कर्म योग

दोनो की सत्ता भिन्न-भिन्न,

कर्म योगी,

कर्म को,

कर्मफल को,

परमात्मा को,

और स्वयं को

भिन्न-भिन्न मानकर

कर्मफल और आसक्ति का त्याग करे,

बुद्धि को ईश्वर में अर्पित कर दे |

सांख्य योगी

इन्द्रियों को ही इन्द्रियों क कर्ता मानकर,

गुणों को ही गुणों का संचालक मानकर,

कर्तापन के अभिमान से रहित,

परमात्मा को स्वयं से अभिन्न मानता

वह ब्रह्म के सिवा किसी सत्ता को नहीं स्वीकारे |

वह ब्रह्म में ही कर्म,

और कर्मफल की सत्ता स्वीकारे |

स्वयं की सत्ता में कर्म या कर्मफल से

अपना कोई सम्बन्ध न स्वीकारे |

ऐसे में अर्जुन क्या करे?

कौन सी राह अपनाए?

कैसे कल्याण हो पाए?'

श्री भगवान तब बोले,

'कर्म सन्यास

और

कर्म योग

दोनों श्रेष्ठ

दोनों का एक ही ध्येय

दोनों ही कल्याणदायक |

लेकिन ज्ञान योग है कष्टमयी |

कर्म योग का साधन बिना किए,

कोई ज्ञान योग न पाए!

कर्मयोगी

कर्म करते-करते

स्वयं सन्यासि-सा हो जाए!

सुख में ही वह सांसारिक-बन्धन

से स्वयं को मुक्त पाए |

ईश्वर की सत्ता

सदा ही बनी रहे,

ईश्वर का साथ न छूट पाए |

ऐसे में

लोकहित में जुटे हुए,

अधिकारी भाव से डटे हुए

कर्म योग ही सुगम है

तुम्हारे लिए

और वही श्रेष्ठ है |'

'हे अर्जुन!

जो मानव किसी से द्वेष न रखे,

इच्छा-आकांक्षा से नाता न जोडे

वह कर्मयोगी,

वह सन्यासी कि श्रेणी ही पाए |'

'राग-द्वेष से दूर जो होता,

मन में जिसके द्वन्द्व न होता,

कर्मो में जो जुटा रहता,

वह इस बन्धन से मुक्त हो जाता |'

'सन्यास योग

और

कर्म योग हैं एक सदा

राह अलग पर साध्य है एक सदा |

बल-बुद्धि से

साधन को साध्य समझकर,

साध्य को पृथक्-पृथक समझा |

ज्ञानीजन भेद यह जाने,

आत्मदर्शन के स्वरुप का साधन पहचाने |

साध्य दोनों का एक ही माने,

आत्मा का परमात्मा में मिलन ही

दोनों का ध्येय माने |'

'साधन भिन्न,

राह भी भिन्न,

फिर भी ध्येय एक है |

आत्म आनन्द

या

परमानन्द,

आत्म सन्तुष्टि

या

परमपद प्राप्ति,

लक्ष्य दोनों का एक है |'

'ज्ञान योग का साध्य वही,

कर्म योग का लक्ष्य वही,

यही सत्य है,

इसे सत्य ही मानो |'

'देखो! उगते सूर्य को देखो

पूरब से जो निकलता है

वह पश्चिम दिशा को जाएगा,

तुम पूरब से पूरब की ओर बढ़ो,

मैं पश्चिम से पश्चिम की ओर जाता हूं

देखो! फिर भी मिलन होगा,

मेरा तुम्हारा,

कहीं न कहीं, किसी न किसी मोड़ पर|'

'वैसे ही साधन भिन्न

पर साध्य सभी का एक है |

कोई जानता है,

कोई जान कर भी अन्जान रहता है |

हे महाबाहो!

तुम क्यों चिंतित हो?

स्वयं को अकेला मत समझो

साथ भुजाएं बने खड़े हैं

वीर सभी,

भ्राता जन, सब सम्बन्धी

और मित्र बना मैं साथ खड़ा हूं

फिर भी चिन्तित हो? हे महाबाहो!

मत व्याकुल हो |'

'ज्ञान योग पर कठिन है |

कर्म योग के बिना साधना सम्भव नहीं |

साधक कोई

माने यदि समस्त जगत को मिथ्या

और एक ब्रह्म को सत्य |

माया का आधार जगत को

एक ब्रह्म ही सत्य

अन्त्:करण में छिपा हो

जिसके-राग-द्वेष-काम-क्रोध-मोह,

चेष्टा न कर शुद्धिकरण की,

ध्यान मग्नता हो फिर भी साधक बनने की

वह साधना व्यर्थ हो जाएगी |

साधक कभी ज्ञान न पाएगा |'

'जब तक शरीर में अहम् भाव है |

भोगों में ममता है |

अनुकूलता में,

प्रतिकूलता में

राग-द्वेष है विद्यमान

ज्ञान निष्ठा का साधन होना,

अहम् भाव से रहित होना

अभिन्न भाव से आत्मा और

परमात्मा को एक भाव से

देखना तो दूर की बात है,

यह योग समझ आना भी कठिन है |

ऐसे में कर्म योग को जानो,

कर्म योग का भाव जानो

कर्म योग के साधक बन कर भी

तुम साध्य को पाओगे

लोकहित में जुटे रहो

तुम साधक हो कर्म भूमि में,

कर्म की आराधना करो,

कर्म से ही परम आनन्द को पाओगे |'

'मन जिसका अपने वश में

इन्द्रियां सभी अपने वश में

अन्त्:करण में राग-द्वेष न विद्यमान

वही साधक ही कर्म योगी |'

'लोकहित में सब प्राणियों का आत्मरुप

ही वह परमात्मा माने

वह कर्मयोगी

कर्म करता हुआ भी कर्म में लिप्त नही होता |

तत्वज्ञानी, जो समझे न स्वयं को कर्ता,

जो देखते हुए, सुनते हुए, स्पर्श से,

सूंघते हुए, भोजन करते हुए, घूमते हुए,

सोते हुए, श्वांस लेते हुए, बोलते हुए,

त्यागते हुए, ग्रहण करते हुए,

आंख खोलकर देखते हुए, आंख मूंद्ते हुए,

यही माने की वह कुछ नहीं करता,

यही सब अंग स्वयं करते है

वह तो माध्यम भी नहीं इनका,

वह तो कर्ता भी नहीं इनका

वह तो स्वयं को इस

आत्मभाव से दूर माने |'

'जो सब कर्मो को

परमात्मा में अर्पण करके,

आसक्ति को त्याग कर्म करे,

वह पाप से लिप्त नहीं होता |

जैसे जल में उगे कमल के पत्ते को

जल छू नहीं पाता

वैसे ही कर्म योगी को इस जगत में व्याप्त

पाप सब छू भी नहीं पाते |'

'कर्म योगी

मन-बुद्धि-शरिर और इन्द्रियों से

ममता नहीं रखते |

लौकिक स्वार्थ से रहते दूर सदा,

नि:स्वार्थ भाव से,

अन्त:करण की शुद्धि हेतु कर्म करते |

कर्म योगी

कर्मो के फल का त्याग करके

परम आनन्द को पाता है |

कर्मो में कामना से प्रेरित मनुष्य

आसक्ति में बंधा रह जाता है |'

'ज्ञान योग का

आचरण करने वाला पुरुष,

अन्त:करण वश में रखे |

वह न करता हुआ,

न करवाता हुआ

बस इस

नौ द्वार वाले शरीर रथी घर में स्थित

सब कर्मो को मन से त्याग कर,

स्वयं को परमात्मा के

स्वरुप में ही लीन पाता है |

वह आत्मा और

परमात्मा में भेद नहीं करता |'

'सम्पूर्ण जगत की

उत्पत्ति, स्थिति

और

संहार करने वाले

सर्वशक्तिमान परमेश्वर,

न तो इस सृष्टि में स्थिति

प्राणियों में

कर्तापन के अहम् की,

न कर्मो की,

और न कर्मफल के

संयोग की रचना करते है

यह सब तो

स्वचलित है

एक से दूसरा,

दूसरे से तिसरा,

तीसरे से चौथा

यह चक्र तो चल पड़ा है|

मनुष्य इस चक्र में बंधा हुआ है

आत्मा का वास्तव में इसमे सम्बन्ध नहीं |

आत्माज्ञानी वही जो

ऊपर उठकर समझे

इस सृष्टि की संरचना को |

'सर्वव्यापी परमेश्वर

तो न किसी के पाप कर्म को,

न किसी के शुभ कर्म को ग्रहण करता,

किन्तु यही ज्ञान

अज्ञान से ढका हुआ है |

सब इस अज्ञान से मोहित है,

इस अज्ञान को ही ज्ञान मान

सब जुटे हुए है

अपने अहम् भाव का विकास करने को |'

'जिसने इस

संरचना को समझा,

वह तत्व ज्ञानी कहलाता है |

अज्ञान उसका

इस तत्व ज्ञान से नष्ट हो जाता है |

वह सूर्य समान

प्रकाशमयी हो जाता |

उस पर अज्ञान न छा पाता |

रात्रि शब्द उसके

शब्द कोश से लुप्त हो जाता|

वह केवल ज्ञानदीप से

प्रज्ज्वलित हो उठता|

तम उसकी परिधि में न आता|

मन उसका अपना न रहता,

तन उसका अपना न रहता,

वह सूर्य सदृश हो जाता है |

वह नित्य प्रति आगे बढ़ता है

जो मिलता उसको रोशनी देता,

जो मिलता उसको प्रकाशित कर देता,

अपना स्वार्थ भला कहां होता है?

सूर्य का प्रकाश क्या

ज्ञान नहीं दे सकता?'

'मन से भेद-भाव मिट जाए,

बुद्धि आत्मा को परमात्मा में मिला जाए |

मन चिन्तन करे परमात्मा के

आनन्दमय स्वरुप का|

ऐसा मनन मन को

परमात्मा में रमा जाए |'

'बुद्धि की सत्ता भी भिन्न न रहे

वह भी एकाकर हो जाए |

आत्मा-परमात्मा के भेद-भ्रम का नाश हो जाए |

ज्ञानी पुरुष को,

ज्ञान

और

ध्येय का सर्वथा अभाव प्रतीत हो,

मन-बुद्धि का भेद मिटे |

परमात्मा ही सर्वत्र नजर आए |'

'ज्ञान, अज्ञान का नाशक है,

परमात्मा को प्रकाशमान करे वह,

उसी ज्ञान की लौ से पाप सभी

नष्ट हो जाते है |

हुम सर्वथा पाप रहित हो जाते है |'

'यथार्थ ज्ञान पाकर ही योगी

अक्षय सुख को पाता है |

यह निर्वाण-ब्रह्मं,

कहीं उत्तम सुख

कहीं परमगति

कही दिव्य परमपुरुष्,

कहीं परमधाम को पाता है |

वह दिव्य पुरुष आत्मज्ञान को पाकर

परमात्मा में स्थित हो जाता है |"

'तत्वज्ञानी का

विषय भाव सर्वथा नष्ट हो जाता है |

परब्रह्म परमात्मा ही है सर्वोपरि,

और कोई सत्ता उसकी नहीं रहती |'

'विध्या सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मंण,

नीच से नीच चाण्डाल,

पशुओं में उत्तम गौ,

मध्यम हाथी

और नीच से नीच कुत्ता

समदर्शी ही लगते |

कर्मो के भेद से ही जानते

पर सभी को शरीर का अंग भी मानते |'

'वर्ण-आश्रम का भेद वही

जो शरीर में प्रत्येक अंग

का भेद है |

जो काम मस्तिष्क व मुख से होता,

वह हाथ-पैर नहीं कर सकते |

जो हाथ-पैर से काम लेते

वह सिर से सिद्ध नहीं होता |

लेकिन सब अंगो से है आत्म भाव,

सब अंगो से सम प्रेम भाव |

कहीं कोई विषमता नहीं |

सभी अंगो का दुख-सुख एक समान |'

'ऐसे ही ज्ञानी जन होते

एक-सा ही प्रेम रखते,

कहीं विषमता होती नहीं

समभाव युक्त मन होता

सर्वत्र ब्रह्म दृष्टि होती |

व्यवहार में ही भेद होता,

कर्म ही भेद करवाते |

लेकिन आत्म ज्ञानी कभी भी

आत्म भाव व प्रेम को

विषम नहीं पाते |

उनका प्रेम सर्वत्र सम रहता |'

'राग-द्वेष को छोड़ जिसने,

जिस मन ने ममता को छोड़ दिया,

वही मन समता में स्थित हुआ |

समबुद्धि जिसकी साथी बनी,

उस मन ने विश्व यह जीत लिया |

मन वह सत-रज-तम से अलग हुआ,

निश्छल मन ऐसा कहलाता |

यह समभाव रूप ब्रह्म कहलाता,

इसी भाव में ईश्वर स्थित होता |'

'कुछ पाकर जो हर्षित नहीं होता,

कुछ खोकर जो रोता नहीं,

वह आसक्ति रहित होता है |

वह स्थिर बुद्धि युक्त, संशयरहित

एक ब्रह्म की सता में ही लीन रहता |

वह 'ब्रह्मवित होता,

ब्रह्म स्वरुप का प्रत्यक्ष मिलन हो जाता |'

'शब्द-स्पर्श-रुप-रस-गन्ध,

आसक्ति-रहित जब हो जाए मन,

विवेक-ज्ञान तब प्रबल रहे,

मन स्वयं ध्यान-मग्न रहे

सात्विक-आनन्द में मग्न रहे |'

'ध्यान-मग्नता,

बाहर से भीतर तक

एक रस में स्थित कर देती,

मन विकल नहीं होता,

मन ध्यान योग में अचल हो जाता |

जग में होकर भी

वैरागी हो जाता,

असीम-आनन्द में मग्न हो जाता |

सुख में रमना

सुख रुप से प्रीति करना

है सरल बहुत |

मन ललचाए, मन भ्रम में डूब जाए |

याद में सुख की मन बार-बार

ललचे,

मन रोए,

मन पछ्ताए |

गया सुख फिर भी लौट न आए |'

'भोग-विलास है क्षणिक सुखदाता,

मन में ईषर्या की अग्नि भड़काता |

विवेक-ज्ञान से पूर्ण पुरुष

इस भ्रमजाल में न फंसे

इस क्षणिक सुख की गति समझे,

मन को इसमें न कभी रमाए |'

'पुरुष के लिए स्त्री,

स्त्री के लिए पुरुष,

इन दोनों के लिए पुत्र, धन और मकान,

आसक्ति सभी मन-इन्द्रियों के विषयों से,

यह सब कहलाते है 'काम' |'

'मन-बुद्धि और इन्द्रियों से होता

जब-जब प्रतिकूल,

इच्छा-पूर्ति में होती जब-जब बाधा उत्पन्न,

द्वेष भाव का होता तब जन्म,

क्रोध स्वभाव में बस जाता,

काम-क्रोध के इस प्रवाह का

वेग जो कर पाए शांत,

साधन से साधक बनकर जो,

शांत-निर्विकार हो पाता,

वही जन योगी कहलाता |

वही जन परम सुख को पाता |'

सुख बाहर से नहीं होता,

सुख भावना का नाम है |

सुख साधना है

सुख आराधना है,

सुख मोल लिया नहीं जाता,

सुख वही रुप जो हुम पहचाने |

सुख वही जो मन की डोरी से नहीं बंधा,

जो हो रहा, वही सुख

उसी भाव में जीना सीखो |

सुख की परिभाषा है सरल बहुत |

जो दु:ख लगता, उसको त्यागो |

जो दु:ख लगता, उसमें सुख खोजो |

यही परम आनन्द है |

'मन जिसका ब्रह्म में लीन हुआ,

उसका सत्य एक है,

ब्रह्म ही होकर, ब्रह्म को प्राप्त वही होता

अन्तरात्मा में जो सुख पाता,

आत्मा में ही रमण करता जो,

आत्मा ही जिसे ज्ञान देती,

आत्मा को अभिन्न माने जो परमात्मा से,

वह सुख-दु:ख का भेद नहीं करते,

उसे बस कल्याण प्रत्यक्ष होता,

वही परम-शांति को पाता,

अक्षय आनन्द को वह पाता |

ब्रह्म ही स्वयं वह हो जाता |'

'ब्रह्म को प्राप्त होकर,

दोष का लेशमात्र नहीं रहता,

मन संशय रहित हो जाता है |

पाप सभी नष्ट हो जाते

हित में जब वह जुट जाता है |'

'मन विजयी हुआ जिसका,

वह परमात्मा में स्थित होकर

शांत मन से, निश्छल मन से

ब्रह्म में लीन हो जाता है |

काम-क्रोध से रहित हुए,

विजयी चित्त वाले,

परमब्रह्म को प्रत्यक्ष पाकर

वह शांतिप्रिय हो जाता |

मन में इच्छा न होती

बस असीम आनन्द की होती अनुभूति |'

'विषय चिन्तन,

मन में छिपे विचार

बार-बार जग उठते,

आसक्ति की आग भड़काते,

मन को ललचाते

रमणिय-सुख का स्वप्न दिखाते,

चंचल मन, मन शांत नहीं हो पाता |

ध्यान-मग्न होकर भी मन मुक्त नहीं हो पाता |'

'चलचित्र मन में चंचलता से

चलें स्वचलित |

इन से ही मन हो बार-बार विचलित |

कर साधन मन का,

साधना से ध्यान जुटा

तभी मुनि मन मुक्ति पा सकता

योग साधन का यंत्र यही,

मन नियमित ध्यान योग में तभी लगेगा |'

'नेत्र मूंद कर नहीं,

नेत्र सर्वत्र विचरा कर नहीं,

नेत्र भृकुटी क्षेत्र में टिका कर ही,

ध्यान मग्नता हो पाती |

प्राण और अपान की गति

सम होकर ही,

समता स्थापित हो पाती |'

'मन चंचल,

नेत्र चंचल,

श्वास गति अति चंचल |

प्राण-अपान विषम गति रखते |

कभी एक नासिका में विचरते |

कभी दूसरी में चले जाते |

ऐसे में चंचल बालक सा रुप लिए रहते |

इस प्राण-अपान की गति को

सम कर दे जो,

चंचल स्वभाव से ध्यान हटे,

वह योगी मुक्त मन का कहलाए |

मन-इन्द्रिय-बुद्धि पर विजय प्राप्त करे |

और

इच्छा-भय और क्रोध से वह मुक्ति पाए |'

'योगी जन जाने

ईश्वर के इस तत्व को |

योगी जन जाने सबके मन में

आत्मरुप में बसे ईश्वर को |

वह सेवा भाव से

देव-ब्राह्मंण-दीन-दु:खी,

मानव जाति के कल्याण में चित्त लगाकर,

ईश्वर को साकार करे |

ऐसा

अहिंसा-सत्य धर्म का पालन,

देव-ब्राह्मंण,

माता-पिता,

गुरुजन

की सेवा-पूजन,

दीन-दु:खी-पीडित जीवो से स्नेह,

सेवाभाव लिए, लोकहित हेतु

आदर से जुटाए जो साधन

ऐसा ही होता योगी जन |'

'यही यज्ञ, यही तप,

यही इस जीवन का प्रयोजन |

योगी जन जाने,

ईश्वर के इस तत्व को |

योगी जन जाने

आत्मरुप से सर्वत्र बसे ईश्वर को |

वह सेवा भाव में चित्त लगाकर,

ईश्वर को साकार करे,

प्रेमभाव से ईश्वर की सत्ता स्वीकार करे |

ईश्वर ही मन है,

ईश्वर ही बुद्धि,

ईश्वर बसा है नेत्रों में |

ईश्वर मेरा परम मित्र,

मैं ईश्वर का अंश बना |

यही शांत ब्रह्म का साधन,

यही लक्ष्य हमारा,

यही हमारा धर्म |'

**6)** **आत्म संयम योग**

बाहर से नहीं

अन्त:करण से जो त्यागे

आसक्ति-भाव को,

फल की चाह को,

कर्मो में जुटा रहे,

वही सन्यासी,

वही योगी |'

'अग्नि त्याग,

सन्यास ग्रहण कर

कर्तापन के अहम् से जो विरक्त न हो पाता,

ममता-आसक्ति और इस काया से

अहम् भाव से रहता जुड़ा,

वह ज्ञान योग से कोसों दूर्,

वह योग भाव से वंचित रहता |'

'ध्यान-साधना से पहले तुम

ममता-आसक्ति-मद-काम-क्रोध

लोभ-मोह का त्याग करो |

मन से स्वयं अहम् भाव मिट जाएगा,

तभी मन यह योगी कहलाएगा |

शरीर-इन्द्रिय-मन द्वारा की क्रिया से

कर्तापन का अहम् जो त्यागे,

संकल्पों का सर्वथा अभाव करे जो,

वही सन्यास है,

वही योग है

उसी में ही सर्वत्र लोकहित का ज्ञान है |'

'ऐसे में

बस बाहर से चोला पहनकर

न सन्यासी कोई कहला सकता |

न योग भाव कभी सिद्ध हो सकता |'

'मन वश में होकर

शांत जब होता

तभी संकल्पो का सभी

अभाव हो जाता

तब स्वयं मुक्ति मिल जाती |'

'शास्त्रविहित कर्मो में

ध्यान-मग्न होकर

अहम् भाव से मुक्ति

मिल जाती |

कर्तव्य-कर्म सभी सिद्ध हो जाते |

इस जीवन की तृप्ति हो जाती |

योग भाव का यही रुप,

योग यही सिद्ध होता |

आसक्ति ही कामना का स्त्रोत,

आसक्ति बिना कामना किस काम की |

कर्म सभी सम्पादित होते,

मन-बुद्धि में बस तुष्टि रहती |

मोह न होता,

तृष्णा न होती,

बस परम आनन्द की होती अनुभूति |

ऐसा त्यागी पुरुष कहलाता |

संकल्पों से बंधा न होता

वह योग पुरुष कहलाता |'

'मैं आप ही अपना मित्र हूं,

मैं आप ही अपना शत्रु हूं |

मेरा कर्म ही महान है

मेरा धर्म ही महान है |

सब साधन मेरे हाथ में हैं

मैं जैसे-जैसे कर्म करुं,

वैसे ही अपना रूप रचूं |'

'धीरता से, वीरता से

दृढ़ निश्चय के साथ

आगे बढ़ो

मन में कोई संकोच न हो,

मन में कोई क्षोभ न हो

मन में कोई लोभ न हो,

बस सदैव ध्येय का ध्यान रहे,

देखो, तब देखो,

उत्थान कोई न रोक सके |'

'जो मन-इन्द्रिय पर विजय पा ले,

वह जीवन अपना सफल बना ले,

वही स्वयं को मित्र माने |

और जो मन की डोर से बंधा हुआ,

आसक्ति से लिपटा हुआ,

'और मिले और' की धुन में लगा

अपने ही धर्म को न जाने,

ऐसा जन शत्रु है अपना, अपने ही घर का |'

'शरीर, इन्द्रिय

और

मन को जिसने

वश में अपने कर लिया,

उसका नाम जितात्मा है |

कुछ हो अनुकूल

या प्रतिकूल,

मिलन हो किसी प्रियजन से

या हो वियोग,

समता में,

असमता में,

मान में, अपमान में,

राग-द्वेष-हर्ष-शोक,

भय, ईर्ष्या, काम, क्रोध न उपजे,

सम हो

चित्त जिसका शांत रहे

मानव ऐसा

स्वाधीन हुआ,

परम आनन्द में लीन हुआ,

सदा-सर्वदा

और सर्वत्र ईश्वर के भाव से

परिपूर्ण् हुआ |'

'दु:ख समझ कर, दु:ख सहकर

जो विचलित न हो,

मन में विकार न उत्पन्न हो,

वह अचल भाव से स्थित हो,

सृष्टि के आनन्दमयी स्वरुप में मग्न रहे |

सृष्टि के निर्गुण-निराकार

तत्व के प्रभाव को समझा जिसने

वही ज्ञान का स्वरुप जाने |'

'सृष्टि में सगुण-निराकार,

साकार तत्व की लीला को,

सब कुछ यह क्यों-कैसे हो रहा,

वही विज्ञान का स्वरुप जाने |

सृष्टि के निर्गुण-सगुण तत्व को,

निराकार तत्व के भाव को

जिसने जान लिया,

वह तृप्त हुआ इस ज्ञान से,

वह तृप्त हुआ इस विज्ञान से |'

'सम्बन्ध उपकार

की अपेक्षा न करके,

अपने स्वभाव के बल पर

जो प्रेम करे सबसे,

जो हित में जुटा रहे

वही सुहृद कहलाए |'

'तुम मुझसे,

मैं तुमसे प्रेम करुं,

तुम मेरा हित सोचो,

मैं भी हित की बात करुं,

ऐसा प्रिय मित्र कहलाए |'

'मन से जो धारण करे

बुरा करने को,

चेष्टा हो जिसकी बुरा चाहने की,

ऐसा पुरुष बैरी कहलाए |'

'स्वभाव ही जिसका प्रतिकूल हो,

हित में जो अहित की सोचे,

वह द्वेष भाव का पात्र हो |

बिना पक्षपात जो मेल कराये,

जो रुठों को सहज मनाए,

हित के लिए जो न्याय करे

वह मध्यस्थ कहलाए |'

'जो अपने में ही मस्त रहे,

न हित-अहित की चिन्ता करे,

न न्याय कर मेल कराए,

ऐसा पुरुष उदासिन कहलाए |'

'श्रेष्ठ वही जो

समभाव रखे,

विलक्षण स्वभाव का यह पुरुष,

श्रेष्ठ पुरुष कहलाए |'

'मन इन्द्रिय को वश में करके,

आशा की अपेक्षा न करके,

ममता से संग्रह न करके,

एकान्त भाव में

आत्मा को स्थापित करने का

यत्न करे परमात्मा में,

ध्यान योग,

स्वच्छ-निर्मल-एकान्त भाव में

आसन स्थापित कर,

चित्त-इन्द्रियों,

मनोवेग-विकारों को वश में करके,

ध्यान मग्न हो,

अन्त:करण करण की सुद्धि का

प्रयास करे जो,

वही परम पुरुष कहलाए |'

'काया, सिर, व गले को

सम करके,

एकी भाव में अचल हो कर,

स्थिरता से,

दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में स्थित करके,

आत्म भाव में लीन होकर

जो आनन्दित हो,

वह स्वयं मुझे पा ले |'

'वीर्य को संयमित करके,

जो तेज ग्रहण करे,

स्वयं को विलक्षण भाव युक्त पाए,

वही ब्रह्मचारी ध्यान योग में स्थित

हो पाए |

पुरुष ऐसा भय रहित हो,

शांत अन्त:करण हो,

मन को स्थिर करके

वह शांतिप्रिय ईश्वर में

स्वयं को स्थित पाए |'

'मन जिसका वश में हो जाए,

वह स्वयं आत्मज्ञानी हो,

कर्म-ज्ञान का ज्ञाता हो,

वह स्वयं जान जाए

इस सृष्टि की संरचना को |

स्वयं जान जाए परम आनन्दमयी

परमात्मा को

वह शांत-निर्विकार भाव से

स्वयं लीन हो जाए |

वही शांतिमय जीवन पाए |'

'हे अर्जुन!

अधिक खाने से,

नींद-आलस्य बढ़ जाता |

अन्न का सर्वथा त्याग

भी इन्द्रिय-प्राण और

मन की शक्ति का नाश करता |

अधिक सोना आलसी बनाए,

न सोना भी रोग लगाए |

ऐसे में सम रहकर जो

संयमित होता,

न अधिक खाता,

न अधिक सोता

नियम से सब कार्य करता

उसी का ध्यान योग सिद्ध हो सकता

दु:खों का नाश तभी हो पाता,

कष्ट जीवन से दूर तभी होता,

जब कर्म में जुटा मानव

खान-पान-निद्रा के आलस्य से दूर,

सदा सम रहता,

ध्यान में मग्न रहता |'

'चित्त जब वश में हो जाता,

आलस्य से पीछा छूट जाता |

एक लक्ष्य सम्मुख रहता,

कर्म से ही आनन्द मिलता,

ध्यान में ईश्वर से मिलन होता,

भोग विषय चिन्तित नहीं करते,

आकांक्षाओं से मुक्त मन होता

वही योग स्थिति होती

मन ध्यान मग्न होता |

परम आनन्दमयी होता |'

'दीपशिखा है प्रकाशमान,

चंचल है मन जैसी |

वायु रहित स्थान में जैसे दीपक

प्रकाशमान रहता,

सम रहकर मन भी प्रकाशमयी होता |'

'एक ज्ञान,

एक ही विज्ञान

पूर्णब्रह्म भी एक,

एक ही परमात्मा |

आत्मस्वरुप है अंश उसी परमात्मा का |

इसी में ध्यान मग्न योगी,

इसी को ज्ञान का पुन्ज समझे |

यही सनातन, निर्विकार,

यही असीम-अनन्त-अपार |

इसी से दृश्य-दर्शन-अहंकार |

सभी कुछ ब्रह्म में ही व्याप्त |

वही आनन्दमय, नित्य, सनातन |

वही सत है, वह चरम, वही चेतन |

वही अचल है, ध्रुव है,

वही अविनाशी, विज्ञानमयी |

यही भाव मन में स्थित कर

योगी योगमयी हो पाता |'

'परमानन्द प्राप्त कर वह,

किसी संकल्प का इच्छुक नहीं रहता |

कर्म ही जीवन-सार लगता,

ईश्वर ही सर्वत्र दृष्टिगत होता |

परमात्मा स्वरुप सुख,

सांसारिक सुखों की भांति

क्षणिक नाशवान,

दु:खों का हेतु

और दु:ख मिश्रित नहीं होता |

वह सात्विक सुख से भी महान

विलक्षण, एकरस और नित्य होता |

वही परमात्मा का स्वरुप,

वही ज्ञान रुप होता |

बुद्धि वही ग्रहण करती,

जैसा मन-दर्पण पर प्रतिबिम्ब

पड़ता |

ध्यान-योग और कर्म से शुद्धि कर

वही योगी ग्रहण करता |

वह विलक्षण सुख पाता |

यह सुख प्रकट नहीं होता,

यह तो योग-योगी और ध्येय के

एकरस स्वरुप का

परम दर्शन होता

यह परमात्मा का रुप होता |'

'भोग-विलास-ऐश्वर्य सभी

सांसारिक

सुख-साधन,

सभी रसहीन, तुच्छ-नगण्य लगते |

दु:ख भी उसको विचलित न करते |

वह समभाव-युक्त होता |

वह मान में,

अपमान में,

वह तिरस्कार में,

निन्दा में

एकरस रहता |

शरीर का कष्ट उसे

कष्ट न लगता |

वह आत्मरुप में ही

ध्यान मग्न होता,

वह ईश्वर में थित होता |'

'वह योगमयी,

वह कर्ममयी

अटल भाव लिए रहता |

शरीर,

इन्द्रिय,

और मन द्वारा

चलना-फिरना-देखना-सुनना,

मनन कर निश्चय करना,

सभी कर्म समभाव से होते |

ज्ञान में बस एकमात्र

परमात्मा शब्द ही विराजमान होता |

कर्मो में कर्ता भाव नहीं होता |

वही योग सिद्ध कहलाता |

धैर्य-उत्साह सदा बना रहता |

मन उसका व्यर्थ चिन्ता नहीं करता,

दृढ निश्चय चित्त में सदा रहता |

संकल्प से आसक्ति

और

आसक्ति से कामना की होती उत्पत्ति |

कामनाओं का सर्वथा त्याग

तभी हो पाता

जब ध्यान में इनका योग न रहता |

मन जब एकाग्र हो जाता,

कामनाओं का सर्वथा अभाव हो जाता |'

'मन को रोकना है कठिन बहुत,

धीरे-धीरे अभ्यास ही

मन को उस पार लगाता |

लक्ष्य पर दृष्टि लगा,

मन को बार-बार समझा |

धीरज से नाता जोड़,

विषय-चिन्तन से नाता तोड़ |

यह सब पलभर में न हो पाए,

बार-बार मन रोए,

आसक्ति से पीछा न छूटे,

लग्न-धीरता से शांती मिले,

मन की डोर से शनै:शनै:

बंध जाए |

मन शनै:शनै:

ईश्वर में लग जाए |'

'मन अस्थिर,

बडा चंचल |

बार-बार वह भटके |

प्रयास से साधक ध्यान लगाए,

मन की लगाम फिर भी हाथ न आए |

पलभर में मन कहीं दूर चला जाए |

कब चिन्तन से निकलकर

मोहित कर दे

भ्रम जाल नया फैलाए |'

'योग सिद्ध होकर

तुम धैर्य न छोड़ो,

सावधानी से साधना करो,

बार-बार मन को रोको,

ईश्वर की आराधना करो |

देखो! मन शांत जब हो जाएगा,

मानव वही पाप रहित होगा |

आसक्ति-कामना-तृष्णा से

रहित तभी मानव होगा |

अभ्यास ही यही करवाएगा,

मैं मानव-मात्र नहीं

मैं ब्रह्म का अंश हूं-मैं ही

ईश्वर का अंश हूं,

तभी यह कर्मयोगी की पदवी पाएगा,

तभी वह पापरहित होगा

तभी ईश्वर से मिलन होगा |

तभी परम आनन्द को वह पाएगा |'

'जो योगी निराकार ब्रह्म में,

अभिन्नभाव से स्थित होता,

वह शास्त्रानुकूल कर्म करता |

वह नित्य-निरन्तर

एक अखण्ड चेतन आत्मा को देखता,

वह समभाव युक्त होता |

एक सत्य ही मन में होता,

सम्पूर्ण जगत मात्र स्वप्न की भांति होता |

वह इसमें स्वयं को स्थिर न पाता |

वह केवल दर्शक बन

स्वयं को ईश्वर में स्थित पाता |'

'जैसे बादल में आकाश हैं,

और आकाश में बादल हैं |

वैसे सब विषयों में ब्रह्म स्थित

और ब्रह्म में सब विषय स्थित होते |

जो समस्त जगत को ब्रह्म माने,

ब्रह्म उसके लिए न अदृश्य कभी ,

न ब्रह्म के लिए वह अदृश्य कभी |

यह मिलन बहुत ही सुन्दर |'

'इस प्रकृति के हर कण में ईश्वर |

यह जीवन ही जीवन नहीं,

यही बना लगे ईश्वर |

प्रत्यक्ष रुप में कण-कण में बसा हुआ

ईश्वर |

तन्मय होकर,

मन-वचन-कर्म में लीन होकर,

शास्त्रानुकूल यथायोग्य व्यवहार

करता,

वह पुरुष सदैव अपने ईष्ट को

उपस्थित पाता |

हर कर्म में उसके ईश्वर साथ

होता |

हर कर्म उसका आनन्दमयी होता |

वह सदा आनन्दित रहता |'

'हे अर्जुन!

प्रत्येक अंग शरीर का जैसे प्रिय होता,

वैसे ही सुख में, दु:ख में

योगी पुरुष समभाव रखता |

सुख पाकर वह हर्षित नहीं होता,

दु:ख उसको कभी नहीं रुलाता,

ऐसा योगी पुरुष श्रेष्ठ होता |'

अर्जुन तब बोला-

'हे मधुसूदन!

समता से व्यवहार करना |

समत्व भाव से ही जीना,

कर्म योग-भक्ति योग-ध्यान योग

और ज्ञान योग की सिद्धि

समता से कैसे स्थापित हो सकती?

चंचल हैं मन,

रोके राह को!

चंचल मन से

समता स्थापित कैसे हि पाए?'

'हे कृष्ण!

वायु के प्रवाह को जैसे रोकना दुष्कर,

बलशाली बहुत,दृढ भी बड़ा मन,

इसके भाव को रोकना है दुष्कर |'

श्री भगवान, तब बोले-

'हे महाबाहो!

निश्चित है मन चंचल बहुत |

वश में हो कठिनता से |

हे कुन्तीपुत्र!

प्रयत्न बार-बार यत्न,

लक्ष्य से दूर होते ही फिर प्रयत्न |

चित्त दृढता से रोके हो,

वैराग्य स्थापित हो जब मन मे

इच्छा-काम-लोभ-मोह से,

मन की लगाम न ढीली हो |'

'देखो! मन स्थिर होगा |

देखो! मन स्थापित हो जाएगा

अपने कर्म भाव में |

देखो! मन स्वयं

आनन्द पाएगा अपने समत्व भाव से |'

'मन जो वश में न कर पाता,

उसमें राग-द्वेष का अधिकार रहता |

मन यहां-वहां डोलता फिरे,

मन आसक्त रहे

ऐसे में समत्व भाव से दूर रहे |

यत्न करो, प्रयत्न करो,

एक बार नहीं,

बार-बार प्रयत्न करो

मन सावधान होगा |

मन स्वयं टिक जाएगा |

मोह जाल स्वयं टूट जाएगा |

यही साधना है समत्व भाव की

यही आराधना है ईश्वर के भाव की |'

अर्जुन तब बोला-'हे क्रिष्ण!

जीवन भर जो साधक,

कर्म भाव में लीन रहा |

ध्यान योग में मन जिसका लगा रहा,

वह एकाएक राह भटक गया,

न जाने कब-कैसे मन भटक गया!

वैरागी था वह,

श्रद्धालु भी था,

सयंम से नाता टूट गया |

ऐसा साधक योग सिद्ध न होकर,

ब्रह्म को प्राप्त न होकर

किस रुप को फिर से पाएगा?

मन की चंचलता से,

विवेक-वैराग्य की कमी से,

मन विचलित जिसका हो जाता,

मोहित मन आश्रय रहित जब हो जाता,

बादल का टुकडा

पृथक होकर अपने समूह से

नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है,

साधक ऐसा कैसी गति पाता?

हे क्रिष्ण! संशय का करो छेदन |

तुम योग विद्या की असीमता के ज्ञाता

तुम से कुछ भी नहीं छिपा |

ऐसे कुछ वचन कहो मुझे,

संशय मेरा मिट जाए जो |'

श्री भगवान तब बोले-

'इस जीवन को तुम अन्त न मानो |

प्रयत्न इस काया से हो,

इसी को अन्त न जानो |

प्रयत्न, और प्रयत्न,

इस रुप में न हो पूर्ण,

तो दूसरे रुप में होगा |

यह आत्मा तो बार-बार जन्म लेगी

यह आत्मा तो बार-बार जन्म लेगी

यह आत्मा तो नहीं मिटेगी |

भटका हुआ है यदि योगी,

वह फिर से रुप धरेगा |

अपनी पहली स्थिति से

उसका उत्थान अवश्य होगा |

वह नष्ट नहीं होगा |'

'हे प्रिये! दुर्गति नहीं कभी पाएगा |

कर्म योग क साधन,

भक्ति योग का साधन,

हर बार तुझे आगे ही बढ़ाएगा |

राह भटका है,

फिर राह पर अपनी आएगा |

'ऐसे में प्रयत्न और होगा,

यत्न बहुत होगा,

दुर्गति नही होगी,

शुद्ध आचरण वाले श्रीमान

के घर ही तेरा फिर

जन्म होगा |

यह जन्म बार-बार होगा,

जब तक मन स्थिर नहीं होगा |

जब तक समत्व स्थापित न होगा |'

'ज्ञानवान का साथ मिलेगा,

कर्मयोग के नए-नए साधन मिलेंगे

सृष्टि सब साधन नए जुटाएगी,

तेरा जन्म नए युग में होगा

तू समर्थवान होगा

हर जन्म तेरा

पहले जन्म से दुर्लभ होगा |

नए रुप में तुझे स्वय

समबुद्धि योग के नए संस्कार मिलेंगे

पूर्वजन्म में संग्रह किए

साधन मिलेंगे

तू फिर एक प्रयत्न की ओर बढेगा,

तू बार-बार प्रयत्न करेगा |

संस्कार तुझे फिर से

कर्म योग में,

भक्ति योग में आकर्षित करवाएंगे |

स्वयं समबुद्धि पाने की ओर बढ़ाएंगे |'

'एक बार नहीं, बार-बार प्रयत्न होगा |

अनेक जन्म होंगे,

संस्कार प्रबल होंगे,

प्रयत्न करेगा,

समभाव स्थापित होगा मन में |

तभी तू परमगति को पाएगा |

कभी न कभी आत्मा का

परमात्मा से मिलन हो जाएगा |'

'हे अर्जुन!

योगी श्रेष्ठ होता

तपस्वी से |

योगी श्रेष्ठ होता

शास्त्र-ज्ञानी से |

सकाम कर्म करने वाले से भी

योगी ही श्रेष्ठ होता |

इसलिए तू योगी बन |

निश्चित कर तू अपना मन |

सम्पूर्ण योगियों में जो

ईश्वर की सत्ता स्वीकारे,

मन-बुद्धि अचल-अटल कर

मुझमें जो स्थापित हो जाए,

वही परम श्रेष्ठ योगी की पदवी पाए |''

**7)** **ज्ञान विज्ञान योग**

'हे पार्थ!

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं

व्याप्त एक ही ब्रह्म में |

ब्रह्म ही नित्य-सत्य और सनातन |

एक ब्रह्म ही

सर्वज्ञ-सर्व व्यापी-सर्वत्र |

प्रकट एक ब्रह्मं योग माया से

एक नहीं अनेक रुपों में |'

'व्यक्त-अव्यक्त,

सगुण-निर्गुण एक ही ब्रह्म |

श्रद्धा से, भक्ति से

अनन्य प्रेम से,

ब्रह्म में तू आसक्त हुआ,

यह योग भाव तेरा सफल हुआ |'

'आत्मरुप सभी का यह ब्रह्मं,

संशय रहित हो कर सुन |

मैं तुझको विज्ञान सहित,

इस तत्व ज्ञान को बतलाता हूं |

ब्रह्म के इस निर्गुण-निराकार का

यथार्थ ज्ञान,

ब्रह्म के इस सगुण-निराकार

और दिव्य-साकार तत्व का

भाव समझाता हूं |

यह विश्व ब्रह्म का एक अंश है |

समग्र रुप जब तू जानेगा,

जानने को शेष कुछ न रह जाएगा |'

'मनुष्य योनी बड़ी दुर्लभ |

अधिकार सभी को ईश्वर की

आराधना का |

जाति-वर्ण-आश्रम-देश की

कोई सीमा नहीं |

ईश्वर की आराधना सब करते |

नए-नए रुप में सब गुणनान करते |'

'कोई एक हजारों में होता,

जो यत्न करता मुझे जानने का |

प्रयत्न करता मुझे पाने का |

ऐसा कोई विरला योगी होता,

जो मेरे तत्व को, मेरे ज्ञान को

पूर्ण भाव से जान सके |'

'संसार का निर्माण हुआ

पृथ्वी-जल-अग्नि-नभ-वायु से |

जीव बन्धन से बंधा,

मन-बुद्धि-अहंकार से |

आठ विषयों से इस

जड़-प्रकृति का निर्माण हुआ |

समस्त जीवों के

शरीर-इन्द्रियों,

प्राण-भोगों में जीवन स्थित है |

इस जड़-चेतन तत्व के

संयोग से

यह विश्व बना है |'

'हे अर्जुन!

समस्त प्राणियों के

उत्पत्ति-स्थिति

और वृद्धि,

इस जड़-चेतन के संयोग से होती |

यह संयोग-वियोग जगत का,

जगत की स्थिरता और प्रलय

ईश्वर में ही यह बार-बार विलीन

हो जाती |

जैसे बादल आकाश में उत्पन्न होते,

आकाश में ही रहते,

आकाश में ही लीन हो जाते |

आकाश ही आधार और कारण है

वैसे ही इस सृष्टि का आधार

इस सृष्टि का कारन ईश्वर है |'

'हे धनन्जय!

ईश्वर ही परम कारण,

ईश्वर ही कर्ता है |

सम्पूर्ण जगत एक माध्यम है |

यह सूत की एक माला है |

मैं तुममे रचा,

तुम मुझमे रचे हो |

ऐसे बंधे हो

कि आदि-अन्त नहीं पता |

कहां से शुरु हुए, कहां को

जाना है |

बस चले हो जीवन की राह में,

इसी पर चलते जाना है |

यही जीवन, जीव का यही ठिकाना है |'

'हे अर्जुन!

मैं जल में रस हूं,

सूर्य-चन्द्र में प्रकाश हूं

आकाश में शब्द,

पुरुष में पुरुषत्व हूं

और मैं ही वेद-ग्रन्थों

में ओंकार हूं |

मैं ही पृथ्वी में पवित्र गन्ध,

और अग्नि में तेज हूं |

सभी प्राणियों में जीवन भी मैं,

और तपस्वियों का तप भी मैं हूं |'

'हे अर्जुन!

सब जीवों की उत्पत्ति मुझसे ही होती है |

सब जीवों की बोधमयी शक्ति भी मैं हूं |

ज्ञान से आकर्षित करे जो तेजस्वी

उसके मुखमण्डल का तेज भी मैं हूं |'

'हे भरत श्रेष्ठ!

बलशाली वही जो

निश्चय से कामना-राग-अहम्-क्रोध

को तज कर बल का प्रयोग करे |

प्राणियों में वही श्रेष्ठ जो शास्त्रानुकूल

'काम' का प्रयोग करे |

मैं ही सम्पादित करता

बलवानों के सामर्थ्य को,

मैं ही सम्पादित करता

विशुद्ध-काम तत्व को |'

'ईशवर की सर्व व्यापकता पहचानो |

ईश्वर की सर्वस्वरूपता पहचानो |

त्रिगुणमय जगत का मूल स्वयं जान जाओगे |'

'मुझसे ही विकसित होते,

मन में बसे सब भाव |

मुझसे ही सभी गुण-अवगुण प्रकट हुए |

सब का सृजन-विस्तार मुझी से होता |

मैं ही मन-बुद्धि-इन्द्रिय विषय में विद्यमान |'

'मैं सब तत्वों का रजो गुण,

मैं सब तत्वों का तमो गुण |

मैं ही सबका सात्विक भाव

मैं समस्त त्रिगुणमय भावों का

कारण-आधार

पर यह गुण मुझमें नही

न इन गुणों में मेरा अंश विद्यमान |

यह मेरी प्रकृति से प्रकट हुए,

स्वयं ही सब यहां रमे हुए |

अपने स्वभाव से सब की प्रकृति बनी |

अपने संस्कारों ने राह निश्चित की |'

'इन त्रिगुणमयी भावों से,

'सात्विक, राजस और तामस'

सब प्राणी मोहित हुए |

परम लक्ष्य को भूल सभी प्राणी

मुझसे विमुख हुव् |'

'विषयों के संग्रह में,

विषयों की कामना में

विषयों को भोगने में

सब प्राणी लिप्त हुए |

विवेक-दृष्टि सबकी वहीं टिकी,

ईश्वर की सत्ता भूल गए |

सब इस त्रिगुणमयी-तत्व में

ईश्वर को खोज रहे |'

'यह मायाजाल,

मोहजाल में बांधे |

यह आलौकिक,

अदभुत त्रिगुणमयी माया,

इस माया के जाल को

जिसने समझ लिया,

इस माया के मोह को

जिसने छोड़ दिया,

वह परम आश्रय दाता को जाने |

वह परम प्राप्त मुझे माने |

वह योगी शरणागत होकर

मन-वचन-कर्म से निर्मल होकर,

इस जगत से तर जाए |

वह सदा कल्याण को पाए |'

'प्रकृति क्या?

पुरुष क्या?

और ईश्वर क्या है?

ईश्वर का सम्बन्ध क्या है मानव से?

वह जो इच्छुक नहीं कुछ जानने को,

ऐसे पापात्मा लोग

नहीं जानने को इच्छुक

इस मानव जीवन का उद्देश्य!

ऐसे पुरुष भूले हैं अपना कर्तव्य!'

'माया मोह में जो रत हैं,

वह असुर-स्वभाव युक्त,

नहीं जानते ईश्वर की सत्ता |

उनका ध्यान नष्ट हुआ,

ईश्वर ज्ञान विलुप्त हुआ |'

'हे श्रेष्ठ पुरुष अर्जुन!

ज्ञान से जो मेरे तत्व को समझे,

शुभ कर्म शील पुरुष ही

मेरी सत्ता को जाने |

वह सुकृति मुझे पहचाने |'

'स्त्री-पुत्र-धन-मान-बढाई,

प्रतिष्ठा-सुख,

और बहुत-सी कामनाएं जिसमें,

पर निर्भर करता जो

ईश्वर की सत्ता को,

श्रद्धा और विश्वास से जो

भजता ईश्वर को,

वह अर्थार्थी भक्त भी

मेरी आराधना में रत |'

'मन से व्याकुल,

शरीर के संताप में,

विपत्ति-रोग-शत्रु भय

से घबरा कर,

जो पूर्ण विश्वास से

अड़िग श्रद्धा से

भजता ईश्वर को,

वह आर्त भक्त भी

ईश्वर की सत्ता स्वीकारे |'

'धन-स्त्री-पुत्र-घर

की चिन्ता से मुक्त हुआ,

ईश्वर की सत्ता पर निर्भर,

जिज्ञासु-भक्त वह कल्याण ही

पाए|

कोई उसकी राह न अवरुद्ध कर पाए |

ईश्वर को जान चुका जो,

जिसे तत्व ज्ञान है मिल चुका ,

वह ज्ञानी जन भी

ईश्वर आराधना में रहे लीन |

समस्त कामनाएं लुप्त हुई,

सहज भाव से ज्ञान की ओर

सब इन्द्रियां प्रवृत्त हुई

ऐसा ज्ञानी जन अति उत्तम |'

'वह एकी भाव से नित्य-निरन्तर

ईश्वर-ज्ञान में मग्न हुआ,

यथार्थ-ज्ञान का रुप दिखा

रहस्य ईश्वर का स्पष्ट हुआ |

ईश्वर ही उसका परम प्रिय

और ईश्वर का वह परम प्रिय |'

'अर्थार्थी, आर्त,

जिज्ञासु-ज्ञानी सभी एक निष्ठ हैं |

ईश्वर की सत्ता स्वीकारें |

ईश्वर को सर्वत्र मानें |

ईश्वर को सर्व शक्तिमान

मानें |'

'ज्ञानी पुरुष

जो तत्व ज्ञान को जान चुका,

वह मेरा अंश पहचान चुका |

मुझमें-उसमें भेद नहीं |

वह मेरा ही स्वरुप बना |

ऐसा मन जो मुझमें रम जाए,

ऐसी बुद्धि जो मुझे स्वीकारे,

वह सृष्टि का अंश पहचाने |

वह सृष्टि का रुप जाने |

ऐसा ज्ञानी पुरुष कर पाते |

मैं उनमें, वह मुझमें

स्वयं ही स्थित हो जाते |'

'जन्म एक

या अनेक,

इसका कोई नियम नहीं |

ईश्वर कू जानने के लिए,

श्रद्धा-प्रेम-विश्वास

है सर्वो परि |'

'इस सृष्टि में जो जब समझा,

एक जन्म में,

या बार-बार जन्म लेकर

मेरा भक्त जब मुझे समझा,

मेरे तत्व ज्ञान को जान गया,

वह मुझको पाकर तृप्त हो गया |

उसका यह जीवन सफल हो गया |'

'ऐसा योगी जन दुर्लभ होता,

लाखों-करोडों जन्म लेते

एक सिद्ध पुरुष बन पाता |

अपने लिए जो जीता नही,

उसकी मर्यादा में जीता,

उसके लिए वह कर्म करता,

उसकी सत्ता में अभिन्न बना,

वह ईश्वर का अंश बन जाता |'

'जिसकी जैसी कामना होती,

वह अपने स्वभाव से प्रेरित

होकर,

वह सूर्य-चन्द्र-अग्नि-इन्द्र,

वरुण-यम को भजता,

अपने-अपने धर्म-वर्ण की पूजा करता |

एक ब्रह्म नही,

एक ईश्वर की सत्ता नहीं,

वह अपने-अपने ईष्ट देव को भजता |

उसकी श्रद्धा, उसकी कामना

उसी देवता में स्थिर रहती |

मैं उसकी इस श्रद्धा को

स्थापित करवाता |'

'ईष्ट देव की पूजा कर

मानव मेरे विधान के भीतर सभी

इच्छित भोगों को पाता |

पर अल्प बुद्धि वाले भक्त

नही जानते,

ऐसे फलनाशवान होते |

वे जिन ईष्ट देवों की पूजा करते,

उन्ही का सानिध्य मिल पाता |

वह पापाचरण से रहित होते,

आसुर भाव से मुक्त होते |

कामनाओं के वश में हो कर पर,

देवताओं के अधीन होते |

वही यदि अपने ईष्ट में भी

एक ब्रह्म की सत्ता स्वीकारें,

ईष्ट देव को भी ब्रह्म भाव से मानें,

एक सत्य रुप ईश्वर की सत्ता स्वीकारें,

आसक्ति-कामना हो एक

ओंकार में,

ऐसे ज्ञानी जन मुझे सदैव पालें |'

'ईश्वर के गुण-प्रभाव,

नाम-स्वरुप-लीला में

जिनका विश्वास न हो,

विषयों के मोह में फंसे,

तर्क-वितर्क कर

मेरी सत्ता को नकारें,

वे बुद्धिहीन हों |

वे मेरे हर रुप को,

मनुष्य की भांति

बार-बार जन्म लेकर

व्यक्ति भाव को प्राप्त हुआ मानें |'

'ईश्वर के सगुण-निर्गुण,

दोनों ही रुप दिव्य और नित्य हैं |

प्राणियों की भांति

शरीर से संयोग-वियोग रुप में,

जन्म-मरण नहीं होता |

मनुष्य रुप में ईश्वर का

आगमन ही

जन्म है और

अन्तर्धा न हो जाना ही परमधाम

गमन है |'

'ईश्वर अजन्मा-अविनाशी,

अपनी प्रकृति की सत्ता

को तभी स्वीकारे,

जब-जब त्राहि मची हो

प्रकृति जनित दुष्टों से,

जब-जब धर्म

की पुन: स्थापन जरुरी हो |

अज्ञानी जन न स्वीकारें

मेरे प्रकट रुप को,

क्यों कि मैं योग माया से

छिपा रहता हूं |

साधारण मनुष्य-सा आचरण

करता हूं |

जो मेरे प्रेमीजन हैं,

मेरी सत्ता स्वीकारते हैं |

मेरे गुण-प्रभाव और लीला में

श्रद्धा रखते हैं,

मैं उन्हें प्रत्यक्ष होता हूं |'

'शेष सभी अज्ञान भाव में

मेरे अविनाशी-रुप को,

नहीं जानते,

मनुष्य रुप में मुझे नही पहचानते |

वे मुझे अपने-सानश्वर ही मानते हैं |

हे अर्जुन!

मैं सब देवगणों, मनुष्यों,

पशु-पक्षी-कीट-पंतगों

को अनन्त भाव में जानता हूं |

कौन-कब-कहां-कैसे था,

कैसे अब स्थित प्रकृति में,

और कौन-कब-कहां-कैसे

जन्म लेगा फिर से

या मुझमें समा जाएग

मैं सब कुछ जानता हूं |'

'मेरे लिए भूत-भविष्य-वर्त मान

का भेद नहीं,

मेरी प्रकृति का चक्र सदा से

चला हुआ |

यह सदा-सर्वदा-प्रत्यक्ष है |

मेरे लिए सब वर्त मान है |

यह जन्म

मात्र एक पल है मेरी प्रकृति का |

इसका आदि-अन्त नहीं हो सकता |'

'नित-नए आयाम स्थापित होते |

नित-नए रुप रचे जाते |

सब बार-बार जन्म लेते,

पर्दे पर नया रुप लिए आते |

बस जो मेरे भाव में लीन हुआ,

उसका रुप मेरे गुणों में समा गया |

निष्काम भाव से,

श्रेष्ठ कर्मो में तल्लीन,

राग-द्वेष जनित द्वन्द्ध् से रहित,

मोह से मुक्त

दृढ-निश्चय से युक्त

मानव् मुझको भजते हैं |'

'जो मेरी शरण में आकर,

इस जन्म-मरण के चक्र से

निकलने का यत्न करते हैं

वे मानव उस ब्रह्म को जानते हैं |

वे सम्पूर्ण कर्म रुप को,

सम्पूर्ण अध्यात्म को पहचानते हैं |'

'जो मानव

इस विनाश शील समस्त जड़

वर्ग को,

इस प्रकृति को, प्रकृति रचित

कर्मो को,

प्राणियों के अन्त:करण में

व्याप्त परमात्मा को,

जानते हैं |

वे मेरे हर रुप को

ईश्वर का समग्र रुप मानते हैं |

वे मेरे इसी य्थार्थ रुप को प्राप्त होते हैं |'

**8)** **अक्षर ब्रह्म योग**

'हे पुरुषोत्तम !

ब्रह्म शब्द भ्रम दे रहा,

इसकी करो तुम व्याख्या |

अध्यात्म-भाव में,

कर्म भाव में है क्या छिपा ?

यह दृश्य जगत अधिभूत शब्द में

देवता विशेष अधिदैव भाव में

या फिर तत्व और कुछ है छिपा ?'

'कैसे रहता अधियज्ञ प्राणियों

के तन-मन में

या यह भाव परमात्मा का?

अन्त समय में अपने मानव

यथार्थ भाव को ईश्वर के

जप-चिन्तन से

प्राणायाम से

या फिर किस साधन से समझता है ?'

श्री क्रिष्ण तब बोले

'परम अक्षर ब्रह्म है |

यह निर्गुण-निराकार परमात्मा का

सूचक है |

यही एक, यही श्रेष्ठ, यही परम लक्ष्य है |

यही

आत्म तत्व

मन-इन्द्रिय-शरीर-बुद्धि

पर ज्ञान का बोध जब कराए,

ईश्वर से अभिनन्न लगे

सम्पूर्ण जीव समुदाय,

अध्यात्म का रुप यही बन जाए |'

कर्म ईश्वर का आदि संकल्प,

कर्म ईश्वर से अभिन्न है |

सृष्टि के आदि में कर्म जन्म लेते,

अन्त तक उसमें रचे रहते |'

'ईश्वर का आदि संकल्प यही होता

'मैं एक ही बहुत हो जाऊँ |

नया जीवन, नित नए रुप बनाऊँ !'

यही भाव जड़-प्रकृति में जीवन लाता |

यही भाव कर्म कहलाता |

इसी भाव से अक्रिय जड़ प्रकृति

स्पन्दित हो उठती |

अनन्त कर्मो की धारा बह उठती |'

'इसी कर्म की आहुति

सूर्य में जा मिलती,

सूर्य से ही वृष्टि होती,

वृष्टि से अन्न होता,

और अन्न से ही प्रजा का जन्म होता |

यही ईश्वर का संकल्प होता |

ईश्वर से यह अभिन्न होता |

प्रकृति से उत्पन्न

प्रत्येक भाव का प्रति क्षण

होता विनाश |

नए-नए भाव का जन्म भी होता |

यह भाव शरीर-इन्द्रिय-मन

बुद्धि-अहम् के आश्रित होता

यह भाव अधिभूत होता,

यह ईश्वर में ही स्थित होता!'

'इस जड़-चेतन विश्व का

प्राण पुरुष है प्रजापति,

जो ब्रह्मां कहलाता |

समस्त देवता इसी ब्रह्मा के अंग हैं |

यही सबका अधिपति और उत्पादक है |'

'ब्रह्मां कहलाता अधिदैव

और यह ईश्वर का ही अंश बना |

यह ईश्वर से अभिन्न होता |'

'ईश्वर ही सब फलों का विधान करता |

सब यज्ञों का संचालत करता|

सब यज्ञों का समापन करता |

व्यापक रुप में हर देह में होता विराजमान |

यह सूक्ष्म भाव है

प्रकृति के हर अंश में होता विद्यमान,

इसे अधियज्ञ कहते |'

'सरल भाव से ज्ञान को समझो,

ईश्वर के स्वरुप को समझो

सर्वव्यापी ईश्वर

इस प्रकृति के हर अंश में व्याप्त |

यही रचे नए-नए रुप,

यही रचे सब विधान |'

'जो सदा-सर्वदा

ईश्वर का चिन्तन करते |

कर्म में लगे,

धर्म में लगे

ईश्वर को मन में पाते

वे स्वयं मुझको पा लेते |'

'शरीर त्याग वह

मुझमें ही समा जाते |

इस प्रकृति के हर कण में ही समा जाते |

ईश्वर को वह भी पा लेते

जो अन्त समय अपने

ईश्वर का ही चिन्तन करते |'

'याद रहे,

समय-सीमा नहीं

ईश्वर के स्वरुप को जानने की |

जीवन में किस क्षण

आत्म तत्व का ज्ञान हो जाए,

पल में, विपल में

जब भी मोह से मानव,

मुक्त हो जाता,

वह ईश्वर को पा लेता |

वह तत्व ज्ञान समझ लेता,

ईश्वर का भाव प्रकट होता |

जाते-जाते इस लोक से,

ईश्वरीय भाव मे समा जाता |'

'हे कुन्ती पुत्र अर्जुन!

अन्त समय में मनुष्य

मृत्यु-शैया पर पड़ा हुआ,

जिस-जिस भाव की कामना करता,

वह उसी भाव को पा लेता |

जैसा जिसका चिन्तन होता,

जैसा जिसका भावना होती,

जैसे संस्कार बसे होते

वैसा रुप ही रच जाता '

'देखो! इस विधान के सूक्ष्म भाव को देखो,

कब-कैसे-कहाँ से अन्त समय आएगा

नहीं पता इस मानव को,

जब-जब जैसा भाव होगा

वही चित्र अंकित हो जाएगा |

इसीलिए कहा है,

मन में प्रभु का चिन्तन करो,

वही तुम्हें मुक्ति देगा,

वही तुम्हे शक्ति देगा!

हे अर्जुन!

ईश्वर के भाव को स्मरण कर |

ईश्वर में चित्त स्थापित कर |

तू युद्ध कर!

यही तेरा निश्चित कर्म हैं |'

'मन-बुद्धि ईश्वर को अर्पित कर दे,

नि:सन्देह तू उसी को पाएगा |

इस जीवन से मोह त्याग,

यह मोह तू ईश्वर से कर |

स्वयं ईश्वर तुझे अपने भाव

में ले जाएगा |'

'हे पार्थ! नियम से अभ्यास कर,

यह नियम सदा है बना हुआ,

इस प्रकृति के स्वामी के योग में

मग्न हो जा |

मन को कहीं और ले जाने से

रोक |

मन स्थापित कर अपने लक्ष्य पर |

तभी तू परम प्रकाशमयी दिव्य रुप को प्राप्त होगा |'

'परमात्मा

सदा सब कुछ जानता है |

वह सबका आदि है |

वह सबका नियन्ता है |

शक्तिमान है, सूक्ष्म भाव में भी

विद्यमान है

अति सूक्ष्म भी वही,

सबसे सक्षम भी वही

समस्त विश्व का आधार वही |'

'जो पुरुष इस सूक्ष्म भाव

को मन में स्थापित करता,

सूर्य सदृश, सब विद्याओं के ज्ञाता

को स्मरण करता,

वह योग-पुरुषत्व को पाता |'

'अभ्यास से भृकुटी के मध्य

मन-प्राण स्थापित करता,

निश्छल मन उसका रम जाता,

परम पुरुष परमात्मा का

वह साथी बन जाता |'

'वह योग बल से मन-इन्द्रिय

स्थिर कर पाता |

वह परमात्मा का आलौकिक

स्वरुप देख पाता |'

'वेद वाणी वही कहलाती,

जो परम आनन्दमयी

परमात्मा का ज्ञान कराती |'

'ब्रह्मं-ज्ञान से कुछ नष्ट नहीं होता |

यह अविनाशी-एक रस-एक रुप युक्त होता |

आसक्ति चित्त की केवल ब्रह्मं में होती |

भ्रम मिट जाता,

परमात्मा कोई बाहर से आ कर

मिल गया

नहीं दिखता,

परमात्मा भीतर है सबके,

वह नित्य प्राप्त हो सकता |'

'पाना है परमात्मा को

तो खोजो उसको अपने भीतर |

आसक्ति-रहित मन को ज्ञान मिल जाता |

ब्रह्मं में, ब्रह्मं भाव से,

ब्रह्मं-प्राप्ति के मार्ग पर संचरण करना,

यही ब्रह्मंचर्य पालन कहलाता |'

'देखने-सुनने वाली

सब क्रियाओं को स्थिर करके,

मन-इन्द्रियों की वृत्ति रोक कर,

अन्तर्मुखी होकर,

मन को हृदय में स्थापित कर,

प्राण को मस्तिष्क में स्थापित कर,

एक आलौकिक आनन्दमयी भाव में स्थित होकर,

'ॐ' शब्द का उच्चारण कर,

नाभि क्षेत्र से मस्तिष्क तक,

मस्तिष्क क्षेत्र में विचार कर,

श्वास को नियमित कर

जो योगी निर्गुण-ब्रह्मं का चिन्तन करता,

इस देह से मुक्त हो जाता,

वह परम गति को पाता |

वह ब्रह्मं में ही लीन हो जाता |

वह निर्गुन-निराकार ब्रह्म में समा जाता |'

'हे अर्जुन!

जो पुरुष अनन्य-भाव से

ईश्वर में अपना चित्त लगाता |

सहज भाव से नित्य-निरन्तर

ध्यान मग्न रहता,

बड़ी सरलता से वह ईश्वर को पा लेता |

ईश्वर भी इस सहज योगी

के लिए सदा तत्पर रहता |'

'अतिश्य श्रद्धा और प्रेम पूर्वक

नित्य-निरन्तर ध्यान साधना में

रत योगी,

ईश्वर में स्थित हो जाता |

इस क्षण भंगुर जीवन से,

इस सुख-दु:ख के मोहजाल से

वह सदा-सदा के लिए मुक्ति पाता |'

'हे अर्जुन!

बार-बार नष्ट होकर,

बार-बार उत्पन्न होना,

प्राणी मात्र का ध्येय बना |

ब्रह्मां की इस सृष्टि में

आने-जाने का क्रम बना |'

'एक लोक से, दूसरे लोक में

दूसरे से तीसरे में

और फिर से किसी और लोक

में जन्म-चक्र नहीं रुकता |

पर ध्यान योग से,

योग भाव से साधना कर,

प्राणों को ईश्वर में स्थापित करके,

ईश्वर में स्थापित हो सकते |'

'ब्रह्मं लोक सब

समय-चक्र से बँधे हुए |

ईश्वर इस समय-चक्र

में नहीं आता |

ईश्वर तो उदगम है |

ईश्वर तो असीम है,

किसी काल-चक्र की श्रेणी

में नही आता |

ईश्वर में स्थित होकर

योगी

पुर्नजन्म की

इस यात्रा से निकल कर

ईश्वर में समा जाता |'

मनुष्य जीवन की अवधि

बहुत अल्प |

हमारा एक वर्ष

देवताओं का एक दिन होता |

हमारे तीस वर्ष, देवताओं का एक

माह होता |

हमारे तीन सौ साठ वर्ष

देवताओं का एक दिव्य वर्ष होता |

बारह हजार दिव्य वर्षो का ऐसे

एक दिव्य युग होता |

यानि इस मनुष्य जीवन् की

परिधि में इसका माप सम्भव नहीं!

ब्रह्मां का एक दिन

एक हजार दिव्य युगों का होता |

इतने ही युगों की रात्रि होती |

ब्रह्मा के दिन को कल्प कहते

और रात्रि को प्रलय |

ऐसे तीस दिन-रात का

एक महीना

और ऐसे बारह महीनों का

ब्रह्मा का एक वर्ष होता,

और ब्रह्मा के सौ वर्षो की

ब्रह्मा की आयु होती |

सबकी समय-सीमा है निर्धारित |

सब काल अवधि से जुड़े हुए |

बार-बार नया रुप घर कर

इस अनित्य लोक में जन्म लेते |

इस आने-जाने के घटना चक्र में

कब कैसे जीवन बीत जाता,

वापिस जाकर फिर लौटना पड़ता |

'योगी जन इस काल तत्व को जानते,

इसकी अनित्यता भी जानते |

ऐसे में प्रेम भाव से लग्न जगाकर,

ईश्वर के तत्व को जानो |'

'ब्रह्मा के दिन में

ब्रह्मा से उत्पन्न होकर,

स्थूल रुप में उपस्थित

जीव सभी प्रकृति में

रच जाते |

नए-नए रुप धरते,

नए-नए स्वाँग रचते

और

ब्रह्मा की रात्रि के आते ही

सभी उसी ब्रह्मा के साथ

सूक्ष्म में विलीन हो जाते |'

'हे पार्थ!

यह चक्र सदा से है विद्यमान |

इससे तू अपनी स्थिति जान |

प्राणी सभी इस जीवन-लीला के पात्र हैं |

ब्रह्मा के साथ उत्पन्न होते हैं,

ब्रह्मा के साथ विलय हो जाते

फिर से जन्म लेने को |'

'इस भाव से परे

एक विलक्षण भाव है विद्यमान |

वह भाव कभी नष्ट नहीं होता |

सदा सनातन,

परम-दिव्य रुप मेरा

कभी नष्ट नहीं होता |

समय चक्र में वह नहीं बँधा |

वही श्रेष्ठ-विलक्षण है |'

'ब्रह्मा से लेकर,

ब्रह्मां के दिन-रात में

उत्पन्न और विलीन हो जाओ,

या फिर मेरी शरण में आकर

पुनर्जन्म के इस खेल से मुक्ति पाओ |

मेरे भाव में,

मेरे साथ में ही

तुम्हारी मुक्ति है |

यह अव्यक्त होकर भी

परम प्राप्त है |

इस सनातन भाव को ही परम गति

कहते है |

इसी सनातन भाव को पाकर ही

मनुष्य परम धाम को जाते है |'

'हे पार्थ!

जैसे वायु-तेज-जल-पृथ्वी

का कारण और आधार आकाश है |

वैसे ही समस्त प्राणी जगत,

ईश्वर की परिधि में आता |

वह परमेश्वर से ही उत्पन्न होता,

वह परमेश्वर में ही व्याप्त रहता |

उसी को सब समर्पित करके

उसके विधान में सन्तुष्ट रहकर,

प्रेम पूर्वक नित्य-निरन्तर तन्मय रहकर,

उसे प्राप्त वह कर सकता |'

'हे अर्जुन!

योगीजन शरीर त्याग,

कब-कैसी स्थिति पाता,

फिर से वह

इस जन्म-मरण के भाव

को पाता,

या फिर लौट कर न आने की स्थिति में रहता |

यह जीवन दो मार्गो मे है बंटा हुआ |

काल-चक्र के इन मार्गो को समझ कर

निश्चित कर अपना लक्ष्य |'

'निष्काम भाव से कर्म करने

वाले योगी,

ज्ञान-भाव से ईश्वर की आस्था में

दृढ-निश्चयी, श्रद्धालु उपासक,

ब्रह्मंज्ञान से परिपूर्ण योगीजन,

इस जीवन से मुक्त हुए

उत्तरायण के छ: मासों में

शुक्लपक्ष में

ज्योतिर्मयी अग्नि देवता के

दिव्य प्रकाशमयी पथ से होकर

वैकुण्ठ लोक में,

अपने अविनाशी ब्रह्म को पाते |

उसी में समा जाते |

वे फिर लौट नहीं आते |

दूसरी राह से,

जो योगी

साकाम-कर्म की श्रेणी में आता,

वह इस जीवन से मुक्त होकर

अन्धकारमयी स्वरुप में,

रात्रिकाल में

दक्षिणायन-सूर्य की स्थिति युक्त

छ: मासों के

कृष्णपक्ष में

अन्तत: अपने कर्मो के भोग

का स्वर्गिक-आनन्द प्राप्त करता,

चन्द्र-सदृश ज्योति पाता

और लौटकर पुन:

इस जीव लोक में आ जाता |'

चौरासी लाख योनियों में भटक कर,

मिला है यह शरीर नश्वर |

जीवन का सदुपयोग करो,

कर्म में जुटे रहो,

धर्म की राह समझो,

तभी मिलेगा अवसर

किसी एक राह पर

जाने का |

किसी एक राह को पाने का |

'ये दोनों राह सनातन हैं |

शुक्ल पक्ष, देव तुल्य,

इसी से परम धाम मिलता है |

यही मार्ग प्रकाशमयी,

गमन करने वाले में ज्ञान का

प्रकाश सदा |'

'जो स्वर्गलोक में ले जाती

वह राह कृष्णपक्ष सी अन्धकारमयी |

स्वर्गिक आनन्द तो देती,

ईश्वर में आस्था तो होती,

साकाम भक्ति से मोहित रहती |

तभी कृष्ण भाव से परिपूर्ण

पुन: इस लोक में जीव को

जीवन देती |'

'जीव पुन: जीवन-मृत्यु

के खेल में आता |

वह बार-बार नया जीवन पाता |

हे पार्थ!

इन मार्गो के तत्व को जान,

श्रद्धा से, भक्ति से,

समबुद्धि युक्त होकर

निरन्तर कर्म कर |

मेरी प्राप्ति का यत्न कर |

एक बार नहीं बार-बार यत्न कर |'

'साकाम भाव से शुभ कर्मो का

आचरण करने वाला योगी,

जब पुण्यों का क्षय होने पर

लौट धरा पर आता है,

निष्काम भाव साधन यदि अपना ले वह,

अपने कर्म के प्रति

अहम् त्याग वह यदि

कर्मो में जुटा रहे,

वह सदा प्रकाशमयी हो जाए |

वह सदा-सदा के लिए मुझमें समा जाए |'

'योगी पुरुष

जब इस जीवन रहस्य के तत्व

को जान लेता,

वह ज्ञान अर्जित करके,

कर्म से धर्म की स्थापना करके

यज्ञ-दान-तप कर्म कर,

पुण्य अर्जित करता,

और प्रकृति के मूल नियम को लाँघ कर

सनातन परम-पद को प्राप्त होता

वह इस संसार चक्र,

से छूट जाता |

वह दिव्य पुरुष

में मिल जाता|

उसके तत्व में

समा जाता |''

**9)** **परम गोपनिय ज्ञान योग**

वानों के गुणों को देखो,

गुण में दोष कभी न ढूँढो,

मिथ्या आरोपण न करो,

दोष रहित भक्त बनो तुम

इस उपदेश का अधिकारी वही

ईश्वर की सत्ता में श्रद्धा हो जिसकी |'

'समस्त दु:खों से,

दु:खमयी कर्मो से,

दुर्गुणों से

जन्म-मरण के सांसारिक बन्धन से,

इस बन्धन के अज्ञात से

वही छूट पाता,

जो ज्ञान से, विज्ञान से

इस ज्ञान योग की महिमा समझे,

वह पाप रहित हो जाता |

गोपनीय योग से परिचित होकर,

मोहमाया से मुक्त हो जाता |

वह बन्धन से मुक्ति पा जाता |'

'परम गोपनीय ज्ञान यह,

ज्ञात-अज्ञात सब विद्याओं का ज्ञाता |

परिपूर्ण है विज्ञान से,

अति पवित्र, अति उत्तम,

प्रत्यक्ष फल देने वाला,

प्रत्यक्ष दर्शन ईश्वर का दे जो,

यह धर्म युक्त,

समझो तो अति सुगम |

यह परम अविनाशी |'

'हे परन्तप!

श्रद्धा से यह ज्ञान समझ सकते,

श्रद्धा रहित

यह भाव समझ न पाता |

संशयों से वह घिरा रहता |

राह भटक,

संसार चक्र में वह भटकता |

बार-बार जन्म लेता,

आकर फिर लौट जाता |

भोगों में ही रत रहता,

योग कभी न जान पाता |

ज्ञान भी, विज्ञान भी,

समझ से उसकी परे रहता |

ईश्वर को वह जान न पाता |

ईश्वर को वह पा न पाता |'

'आकाश से जैसे

वायु-जल-तेज-पृथ्वी,

सुवर्ण से गहने,

मिट्टी से बर्तन व्याप्त रहते,

वैसे ही यह विश्व सारा

सगुण-निराकार परमात्मा में व्याप्त सदा |

सब प्राणी जन

मेरे संकल्प में आधार स्थित |

यदि देखो तो वास्तव में

मैं उनमें स्थित नहीं कहीं |

असाधारण योग शक्ति को मेरी देखो

समस्त जगत मुझमें स्थित है

और मैं फिर भी स्थित नहीं कहीं

कारण भी मैं हूँ तुम्हारा,

आधार भी मैं हूँ तुम्हारा |

सर्वव्यापकता

को मेरी समझ,

मैं तुझमें होकर

भी

तुम्हारी स्थिति

से विरक्त हूँ |'

'निर्लिप्त भाव से

इस प्रकृति की

मैंने रचना कर दी |

इस भाव से मैं

विरक्त हूँ |

तुम मानो तुम्हारे साथ हूँ,

तुम मानो तुम्हारे ज्ञान हूँ |

पर मैं होकर भी

तुममें स्थित नहीं हूँ|'

बादलों का

आधार आकाश है जैसे

पर बादल उसमें सदा नहीं रहते |

अनित्य हैं, स्थिर सत्ता नहीं उनकी |

ऐसे में आकाश सदा रहता,

और बादल हैं या नहीं कहीं,

आकाश सदा व्याप्त रहता |

उसकी स्थिरता बनी रहती |

'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड

मेरी योग शक्ति से निर्मित,

प्राणी का आधार वही |

जगत है, मुझसे है |

प्राणी है, मुझसे है |

मैं प्राणी-मात्र से स्थित नहीं |'

'मेरी योग शक्ति को देखो |

प्राणी को धारण करने वाला,

प्राणी का पोषण करने वाला

प्राणी को उत्पन्न करने वाला

निर्लिप्त भाव से कैसे

अपनी स्थिति में स्थित होकर

प्राणी मात्र में स्थित नहीं ||

आकाश से उत्पन्न होकर

वायु सर्वत्र विचरती,

आकाश में सदा स्थित रहती |

मेरे संकल्पों से उत्पन्न प्राणी,

सर्वत्र-सदा मुझमें स्थित रहता |

तब भी इस प्राणी मात्र के

मोह भाव से मैं मुक्त रहता |

इस प्राणी मात्र के विकारों का

सर्वथा मुझमें अभाव रहता |'

'हे अर्जुन!

ब्रह्म की आयु जब पूर्ण होती,

कल्पों का जब क्षय हो जाता,

महाप्रलय के उस काल में,

सब प्रकृति जनित प्राणी

नष्ट हो जाते |

सब मेरी प्रकृति में लीन हो जाते |

कल्प रात्रि के बीत जाने पर,

मैं नई प्रकृति का निर्माण करता |

मैं नए रुप फिर स्थापित करता

फिर से एक नई सुबह होती |

अपनी प्रकृति में नए रुप रचता |

अपने गुण-कर्म-स्वभाव के

बन्धन से जो जकड़ा रहता,

वह नए कल्प में

अपने स्वभाव के अनुरुप जन्म लेता |

वह फिर से

इस सृष्टि के आदि रुप में जन्म लेता |

जब तक मेरी

इस प्रकृति के वश में

प्राणी रहता,

तब तक उसका जन्म होता |

वह हर नई सुबह

हर नयी शाम को

एक नया रूप धरता |

मेरे स्वरूप को जो जान लेता |

मेरी शरण में जो आ जाता,

वह मुझे ही प्राप्त हो जाता,

वह मेरे रूप में ही

समा जाता |'

'हे अर्जुन!

मैं अपनी

सृष्टि-संरचना की

कर्म लीला से

आसक्ति नहीं करता |

प्रकृति रचित जो जैसा

कर्म करता,

जिसके जैसे गुण हो जाते

मैं निर्लिप्त भाव से

उनके कर्मो से उदासीन रहता |

जैसे प्रकृति को रच कर,

उस प्रकृति के हर प्राणी में

बसकर भी,

मैं आसक्त नहीं होता,

कर्म करके भी

कर्म बन्धन में नही बँधता |

मुझे कर्मो के फलस्वरुप

हर्ष-शोक-सुख-दु:ख का

भाव नहीं होता,

वैसे ही प्राणी यदि

ऐसा भाव स्थापित करे

तो वह कर्म बन्धन से मुक्त हो सकता |

मेरी तरह प्रकृति का होकर भी,

कर्मो को निभाकर भी,

मेरे रुप में समा सकता |'

'हे अर्जुन!

मेरी अध्यक्षता में

प्रकृति अपना कर्तव्य निभाती |

मैने प्रकृति को सत्ता-स्फूर्ति प्रदान कीं,

समस्त जगत की उत्पत्ति-स्थिति और

संहार की क्रियाएँ प्रदान कीं |

यह चक्र सदा चलता रहा है,

और सदा चलता रहेगा |'

'मेरी सर्वव्यापकता को न समझ,

मूढ लोग मुझे तुच्छ समझते |

मेरी प्रकृति को मुझसे अलग मानते |

मैं मनुष्य रुप में आया,

लोकहित हेतु |'

'यह लीला रची मैंने

धर्म स्थापना हेतु |

मेरी अवज्ञा करते

अज्ञानता से,

मुझे साधारण पुरुष मानते

अपने अहँ में डूबे |

ऐसे अहँकारी जन,

व्यर्थतम आशाओं में डूबे,

व्यर्थ कर्मो में रत,

विक्षिप्त चित्त, अज्ञान भाव से

अन्धकारमयी स्वरुप दे

स्वयं को ज्ञानी समझते |'

'राक्षसी भाव लिए,

द्वेष भाव से दूसरों का

अनिष्ट करते,

दूसरों को दु:ख पहुँचाते |

काम-लोभ के वश में होकर,

आसुरी प्रकृति में लिप्त हुए,

दूसरों से क्लेश रखते,

उनके स्वत्व हरण में लगे रहते |'

'मोह के वशीभूत होकर,

प्रमाद से प्रेरित हुए

मोहिनी प्रकृति युक्त पुरुष,

अपनी इच्छा पूर्ति मं

दूसरों को दु:ख पहुँचाते|

वे आसुर स्वभाव पर

आश्रित होते |

प्रकृति के स्वरुप से

उलट भाव में स्थित रहते |'

'परन्तु हे कुन्तीपुत्र!

जो दैवी प्रकृति पर आश्रित होता,

वह प्रकृति के स्वरुप को समझता |

वह प्रकृति के अनुरुप चलता |

वह विलक्षण जन मुझे

सब प्राणियों का सनातन कारण जानता |

वह मुझे नाशरहित, अक्षर-ब्रह्म जानकर

अनन्य मन से मुक्त होकर,

मेरे ज्ञान-रस में डूबा,

मेरे कर्म-ज्ञान को जान कर,

मुझमें निरन्तर स्थापित रहता |

मुझको निरन्तर स्मरण करता |'

वह दृढ-निश्चयी होता |

मेरे नाम-गुण का ज्ञान रखता,

उसे सदा स्मरण करता |

मुझे पाने का यत्न करता |

कर्म करता,

लोकहित का चिन्तन करता,

मेरे ध्यान में चित्त लगाता,

मेरी राह पाने को आतुर रहता,

अनन्य भाव से मेरी उपासना करता |'

'ज्ञान योगी

ज्ञान यज्ञ से

अभिन्न भाव से,

निर्गुण-निराकार ब्रह्म की

उपासना करते |

ज्ञानयोगी

कर्तापन के अभिमान से रहित रहकर,

शरीर-इन्द्रिय और मन द्वारा

होने वाले समस्त कर्मो में,

गुणों को गुण ही बरतते,

सम्पूर्ण दृश्यवर्ग को मृगतृष्णा के जल सदृश

समझते |

एक निर्गुण-निराकार परब्रह्म

की सत्ता ही स्वीकारते |

उसी का श्रवण-मनन-चिन्तन करते,

अभिन्न भाव से उसी में स्थित रहते |'

'ज्ञानी जन ऐसे भी होते,

जो सम्पूर्ण विश्व को

ईश्वर से उत्पन्न हुआ मान,

उसी में सभी कुछ व्याप्त है मानते |

विश्वरुप में स्थित मान ईश्वर को,

सूर्य-चन्द्र-अग्नि-इन्द्र-वरुण

एवं सभी प्राणियों को

ईश्वर का स्वरुप मानते |

कर्मो के प्रतिपादन से वे

यथायोग्य निष्काम भाव से पूजा करते |

जो जैसे रुप में

मेरा रुप देखता,

जो जैसा मेरा

स्वरुप समझता

वैसा ही वह मुझको पूजता |'

'सब यज्ञों का आदि भी मैं हूँ,

सब यज्ञों का अन्त भी मैं हूँ |

क्रतु, यज्ञ और स्वधा भी मैं हूँ |

औषधि-घृत और मन्त्र भी मैं हूँ |

अग्नि भी मैं हूँ,

और यज्ञ की सभी क्रियाएँ

मुझसे ही सम्पूर्ण होतीं |

मेरे रुप अनेक,

मैं हर नए भाव में दिखता |

जो जैसा कुछ देखता,

मेरा भाव उसे वैसा ही मिलता |'

'मै कण-कण में हूँ विराजमान,

मेरा रुप रचे नित नए विधान |

सम्पूर्ण जगत है धारण मुझमें |

कर्मो का फल निर्धारित

करना मेरे विधान में आता |

माता-पिता-पितामह के रुप में

मैं सर्वत्र दृष्टिगत होत |'

'जो प्राणी मात्र को विशुद्ध कर दे

वह ओंकार भी मैं हूँ |

ज्ञान का भण्डार रचा जो

वह ऋगवेद, सामवेद और

यजुर्वेद भी मैं हूँ |

सब मेरे की स्वरुप है,

सभी ईश्वर के विभिन्न रुप है |'

'जिसे परम धाम तू कहता,

वह परम धाम है मेरा रुप |

सम्पूर्ण जगत का रक्षण करने वाला,

सबका पालनहार भी मैं हूँ |

समस्त कर्मो का

शुभ-अशुभ भी मैं हूँ |

सब का एक निवास है मुझमें |'

'प्रत्युपकार न चाहकर

उपकार ही करता |

सब का हित हूँ चाहने वाला |

उत्पत्ति-प्रलय का

हेतु सबकी |

सबका आधार-निधान,

और

अविनाशी कारण भी

मैं हूँ |'

'मैं सूर्य से तपता हूँ,

वर्षा का आकर्षण करता हूँ,

उसे धरा पर बरसाता हूँ |

हे अर्जुन!

मैं ही अमृत और मृत्यु भी मैं हूँ |

मैं ही सत्

और असत् भी मैं हूँ |'

'तीनों वेदों के विधान से

चलकर

साकाम कर्म जो करते,

कर्म काण्ड से श्रद्धा व प्रेम करते |

मेरी सर्वरुपता से अनभिज्ञ होकर,

सोमरस का पान जो करते,

पाप रहित होकर,

स्वर्ग प्राप्ति की चाह लिए,

वे मेरी उपासना करते|

वे पुण्य करते, पाप नहीं करते,

बस कामनाओं का अभाव नहीं होता |

वे स्वर्ग लोक को जाते,

देवताओं का सानिध्य पाते,

अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर पाते |

अपने पुण्यों के बल पर

स्वर्ग लोक में आनन्द उठाते |

पुण्यों का हिसाब पूरा कर

लौट धरा पर वापिस आते |'

'एक नया अध्याय

फिर से आरम्भ हो जाता |

वेदों में कहे

साकाम कर्म भाव से,

साधन तो कर लेते साधक,

स्वर्ग को पाने का |

पर भूले रहते

जीवन के मूल तत्व को |

बार-बार का

यह आना-जाना

कभी नहीं रुक पाता |

पुण्य का प्रभाव

स्वर्ग ले जाता,

क्षीण हुआ तो

मानव लौट धरती पर आता |'

'यह चक्र सदा चलता

रहता |

जो अनन्य भक्त

ईश्वर का चिन्तन करते |

निष्काम भाव से

ईश्वर को भजते,

पाप-पुण्य का,

इच्छा-आसक्ति का

अभाव करते,

वे नित्य-निरन्तर

चलते-चलते,

कर्म की राह पर आगे बढ़ते,

मेरे परम धाम में आ जाते |

मुझे स्वयं प्राप्त हो जाते |

सब बन्धन क्षण भर में

छूट जाते |'

'हे अर्जुन!

कामना-सिद्धि को

जो पूजा करता देवताओं की,

वह विधि पूर्वक तभी कहलाती

जब साकाम भक्त

देवता को ईश्वर का ही एक रुप मानता |'

'जो इस तत्व को न समझकर,

देवताओं को ईश्वर से भिन्न मानता,

उसका पूजन अज्ञान युक्त,

अविधि युक्त कहलाता |'

'युक्त विश्व विराट,

विराट रुप ईश्वर का |

प्राणी-देवता-सबका

नियन्ता ईश्वर |

जो इस तत्व को जाने नहीं,

वह ईशवर को न पा पाता |

वह पुनर्जन्म को प्राप्त होता |

वह लौट धरा पर फिर से आता |'

'देवताओं को पूजकर,

देवताओं को पाते |

पितरों को पूजकर,

पितरों को पाते |

देव-पितरों की पूजा

साकाम भाव से युक्त ही होती |

अपना फल देकर नष्ट हो जाती |'

'देवताओं को पूजो,

पितरों को पूजो,

ईश्वर के भाव मान कर पूजो,

निष्काम भाव से पूजो

तभी सहज ईश्वर पाओगे |'

'भूतों को पूजकर,

भूतों को ही पाते |

वे तामसी भाव के पूजक होते,

अनिष्ट फल किसी और का चाहते |

वे मेरी भक्ति की परिधि में नहीं आते |'

मेरी पूजा निष्काम भाव से,

उपसना करो आसक्ति त्याग के,

पुनर्जन्म नहीं, मुझसे मिलन हो जाएगा |

मेरा भक्त निश्चय ही मुझे पाएगा |'

'वर्ण-आश्रम-जाति का भेद नहीं |

भक्त की कोई और श्रेणी नहीं होती |

भक्त बस भक्त ही कहलाता |

बल-रुप-धन-आयु-जाति

गुण-विद्या का भेद नहीं होता |

भक्ति में विश्वास प्रबल होता |

भक्ति में भाव प्रबल होता |'

'प्रेम भाव से

पत्र-पुष्प-फल-जल,

शुद्ध बुद्धि, निष्काम भाव से

जो कुछ भी प्रेम भाव से

मुझको अर्पित कर देता,

मैं प्रेम भाव से ग्रहण करता |

मैं नित नए सगुण रुप धर कर

प्रीति सहित ग्रहण कर लेता |'

'हे अर्जुन!

अर्पण कर अपने कर्म को,

अर्पण कर अपने अन्न को,

अर्पण कर यज्ञ-दान-तप को,

सब अर्पण कर ईश्वर को |'

'समस्त कर्म जो

अर्पण कर दे,

ईश्वर भाव में स्थित हो जाए |

सन्यास भाव मन में

आ जाए,

दृढ-निश्चय के साथ

स्वयं शुभाशुभ कर्मो

से मुक्त हो जाए |

अभाव हो जाए

कर्मफल का,

उसी अभाव में वह ईश्वर

पा जाए |

वह मुक्त हो जाए,

वह ईश्वर को पा जाए |'

'मैं सब प्राणियों में

समभाव रखता,

नहीं किसी से राग-द्वेष,

प्रिय-अप्रिय का भाव नहीं है |

जो मुझे स्मरण करता,

मैं भी उसको स्मरण रखता हूँ |

प्रेम भाव से जो चाह मेरी करता,

मैं प्रेम भाव से उसे मिलता हूँ |

जो मुझमें निष्ठा स्थापित रखते,

मैं उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देता हूँ |'

'अतिशय दुराचारी मेरा स्मरण यदि करता,

शुभ संस्कार यदि जागृत हो उठता,

पापों से आसक्ति त्याग,

मुझे स्मरण करने लगता,

वह साधु भाव को प्राप्त होता |

उसके दृढ-निश्चय को मैं नतमस्तक |'

'मेरे भाव को जिसने जान लिया,

उसे स्वयं आसक्ति से

विरक्ति मिल जाती |

मन द्वेष भाव से मुक्त हो जाता |

वह धर्मात्मा हो जाता,

वह परम शाँति को पा लेता |'

'वह मेरा साधन

अपना लेता,

वह नष्ट नहीं हो पाता |

वह पुन:पथभ्रष्ट नहीं होता |'

'हे अर्जुन!

ईश्वर की भक्ति में

जाति-वर्ण-लिंग-भेद नहीं |

ईश्वर वर्ण भेद नहीं करता |

कर्मो से वर्ण भेद हो सकता |

मेरी भक्ति में जाति-वर्ण-लिंग

का भेद नहीं |

जो भी है वह प्राणी मात्र,

मेरा ही वह अंग है |

अपने अंगों से

मुझे सम प्रेम भाव

मेरे लिए पुरुष-स्त्री,

शूद्ध-वैश्य-ब्राह्मंण

और चण्डाल सभी एक समान,

मेरे भक्त सदा ही महान |

मेरी शरण में जो कोई आता,

वह परम गति को पाता |

वह मेरे धाम चला आता |'

'जब दुराचारी भी

व्यभिचार छोड़

मेरे भक्त बन सकते,

फिर उस ब्राह्मण का क्या कहना,

जो नित्य-निरन्तर मेरी भक्ति में

मग्न रहता |'

'राजा होकर भी जो

ऋषियों-सा करे आचरण,

शुद्ध स्वभाव से करे जीवन-यापन,

वह राजर्षि सदा परम गति को पाते है |'

'सुखरहित-क्षण भंगुर शरीर

को भूल जाओ,

निरन्तर ईश्वर-भक्ति करो,

ईश्वरीय भाव में रत होकर

कर्म करो,

ईश्वर में मन लगाओ,

ईश्वर की आराधना करो,

ईश्वर में आत्मा अपनी स्थित करो,

देखो! स्वयं देखो

ईश्वर स्वयं प्रकट होगा |

ईश्वर भाव जागृत रहेगा

और ईश्वर तुम्हें मिल जाएगा |'

10) **विभूति योग**

श्री भगवान बोले,

'हे महाबाहो!

भक्ति का तत्व अत्यन्त गहन ,

बार-बार उसे तू सुन,

श्रद्धा-प्रेम से उसे समझ |

उपदेश मेरा तुझे परमात्मा

का तत्व समझाएगा |

यह परम गोपनीय भाव तुझे

ईश्वर के गुण-प्रभाव और तत्व का

रहस्य विधि पूर्वक समझाएगा |

'तुम्हारा मुझमें अतिशय प्रेम,

वचन सुनते मेरे तुम

पूर्ण श्रद्धा और प्रेम से |

इसीलिए मैं तुम्हे बार-बार

इस परम गोपनीय

गुन-प्रभाव और तत्व

का रहस्य खोल रहा |

तुम्हारी हितकामना

मेरा लक्ष्य बना |'

'मैं देव-ऋषियों का आदि कारण,

उनका निमित और प्रभाव भी मैं हूं |

मैं कब किस रुप में प्रकट होकर,

कब कैसी लीला रचूँगा

देव-ऋर्षि भी न जान सकें |

मेरी लीला का महत्व

मेरे आने पर ही खुल पाता |'

'जो ईश्वर को अजन्मा माने,

जो ईश्वर को अनादि, जन्म रहित जाने,

वह ईश्वरीय-तत्व को पहचाने |

मनुष्यों में वह ज्ञानवान की श्रेणी पाए |

ईश्वर की नित्यता, सर्वव्यापकता

समझकर

वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाए |'

'ईश्वर हर भाव में स्थित है,

ईश्वर हर रुप में स्थापित है |

प्रकृति के कण-कण में

सदा से, सदा के लिए

कारण बन सबका,

विराजमान है |'

'ईश्वर तुम्हारी निश्चय करने की शक्ति

का भाव है |

ईश्वर तुम्हारा यथार्थ ज्ञान है |'

'ईश्वर ज्ञानी पुरुषों में मोहभाव

की विरक्ति करता |

ईश्वर क्षमा-सत्य,

सुख-दु:ख,

भय-अभय, के भाव में है |'

'ईश्वर इन्द्रियों को वश में

करने का हेतु है |

ईश्वर मन में समता स्थापित करता |

ईश्वर संतोष-दान-तप-कीर्ति-अपकीर्ति

के भाव में विराजमान है |'

'स्वधर्म पालन हेतु,

कर्म यज्ञ हेतु,

सब भाव ईश्वर की सत्ता-शक्ति

से स्थापित होते |

सृष्टि है, ईश्वर से है |

ईश्वर सर्वत्र विराजमान है |

प्राणी मात्र की सत्ता में

ईश्वर का प्रबल योगदान है |'

'सप्त महर्षियों का जन्म

ईश्वर के संकल्प से हुआ |

ईन्हीं से प्रजा का विस्तार हुआ |

यही धर्म की व्यवस्था चलाते |'

'जगत की रचना के

हर नए कल्प में

स्वयं भगवान

ब्रह्मा का रुप धर कर करते |

ब्रह्मा ने मन से अपने

मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य,

पुलह, क्रतु और वरिष्ठ

सप्त ऋषियों की रचना कर दी |

ये प्रवृत्ति मार्ग का

संचालन करते,

ब्रह्मा के कर्म इन्हीं से

निष्पादित होते |'

'पूर्व कल्प में

प्रलय काल के समय

नष्ट हुए आत्म तत्व के ज्ञान

को पुन: प्रचारित करने,

ईश्वर

सनक, सनन्दन, सनातन

और सनत्कुमार

नाम से चार रुपों में प्रकट हुए |

इन मनुष्यों ने आत्म तत्व का

फिर से उपदेश दिया |'

'ईश्वर के संकल्प से

सृष्टि की नई सुबह होती |

ब्रह्मा का एक दिन

सृष्टि का एक कल्प होता |

इस एक दिन में

चौदह मनु स्थित होते |

प्रत्येक मनु के काल को

मन्वन्तर कहते |'

एक मन्वन्तर

मानवी गणना में

तीस करोड़ सड़सठ लाख

बीस हजार वर्ष का होता |

प्रत्येक मन्वन्तर में

धर्म की व्यवस्था और

लोक रक्षण के लिए

भिन्न-भिन्न सप्तर्षि होते |

एक मन्वन्तर बीत जाने पर

मनु भी बदल जाते |

उन्हीं के साथ-साथ

सप्तर्षि, देवता, इन्द्र और मनुपुत्र

भी नए रुप लिए आते |

ब्रह्मा के इस कल्प में

स्वयम्भुव, स्वरोचित,

उत्तम, तामस, रैवत और

चाक्षुप, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि,

ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि,

रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि

और इन्द्रसावर्णि मनु स्थापित हैं |

'ब्रह्मा से उत्पन्न

सभी तत्व ईश्वरीय तत्व का भाव लिए,

ईश्वरीय संकल्प से उत्पन्न हुए |

इसी भाव से सब प्राणी

इस संसार में स्थापित हुए |'

'जो पुरुष ईश्वर के

इस स्वरुप को समझता है,

योग शक्ति के तत्व का

भाव समझता है,

वह निश्छल भक्ति योग युक्त होता है |'

'संशय रहित यह भाव जानो,

संशय रहित होकर

ईश्वर पहचानो |

सम्पूर्ण जगत,

की उत्पत्ति का

कारण ईश्वर है |'

'ईश्वर के योग बल से ही

यह सृष्टि चक्र है चल रहा |

ईश्वर की शासन-शक्ति से

सूर्य-चन्द्र-तारे और

पृथ्वी नियम में बँध कर

विचर रहे |

समस्त प्राणी बार-बार

जन्म धर कर

अपने कर्मो का फल भोग रहे |'

'सबका नियन्ता और प्रवर्तक

ईश्वर को सब समझकर बार-बार

चेष्टा में संलग्न

ऊपर उठने को,

अच्छे से और अच्छा बनने को |'

'ज्ञान युक्त मानव

श्रद्धा-भक्ति से

ईश्वर के गुण-प्रभाव को समझते हैं,

सदा-सर्वदा ईश्वर में मग्न होकर

ईश्वर को स्मरण रखते है |'

'निरन्तर ईश्वर में मन लगाने वाले,

प्राणों को स्थिर कर ईश्वर में,

भक्ति से स्थापित होकर ईश्वर में,

भक्त सदा ईश्वर भक्ति

की चर्चा करते |

ईश्वर के प्रभाव को सदा समझते |

वे सदा सन्तुष्ट रहते,

वे सदा वासुदेव को

स्मरण कर,

वासुदेव में ही रमण करते |'

'प्रेम योग से ईश्वर

भजन करके,

सदा ध्यान में लगे हुए,

तत्व ज्ञान योग समझ पाते |

तत्व ज्ञान से अन्त:करण में

ईश्वरीय लीला, रहस्य,

महत्व, प्रभाव के भाव

स्थापित कर पाते |

वे बुद्धियोग में

संयमित मन से

ईश्वर को अवश्य प्राप्त होते |'

'हे अर्जुन!

अपने भक्तों पर अनुग्रह करके,

तत्व ज्ञान का दीप जलाता |

अन्त:करण में स्थित होकर

अज्ञान जनित अन्धकार को

प्रकाशमय कर देता |'

अर्जुन बोला-

'आप परम ब्रह्मां,

परम धाम,

और

परम पवित्र हैं |

सनातन दिव्य पुरुष,

देवों के आदि देव,

सर्वव्यापी माने सब ऋषिगण |

देवर्षि नारद, देवल ऋषि

और ऋषि वेदव्यास का यही कथन |

स्वयं आप ने कहे अपने

अतुलनीय प्रभाव के वचन |'

'हे केशव!

तुम जो कहते मुझसे,

वही सत्य स्वीकारता मैं,

हे भगवान! लीलामयी हो,

नए रुप रचते हो |

देवता लोग न पहचान पाएँ ,

असुर भी न जान पाएँ |

आपके नए रुप को न

पहचान पाएँ |

'

हे समस्त प्राणियों को उत्पन्न

करने वाले!

हे प्राणियों के ईश्वर!

हे देवों के देव!

हे जगत के स्वामी!

हे पुरुषोत्तम!

अपरिमित रुप-गुण-प्रभाव व लीला,

अपरिमित है ज्ञान, रहस्य, प्रभाव सभी का |

स्वयं को ही पहचानते हो,

स्वयं की लीला जानते हो |

तेज-बल-विद्या-ऐश्वर्य-शक्ति

से युक्त हो,

दिव्य विभूतियों के स्वयं ही ज्ञाता हो |

समस्त लोक हैं व्याप्त जिनसे,

ऐसी विभूतियों का वर्णन तुम्हीं

कर सकते |'

'हे योगेश्वर!

कैसा चिन्तन करूँ ?

कैसे पहुँचूँ तुम तक भगवन्?

किस-किस रुप में तुम्हें भजूँ ?

किस-किस भाव में करूँ चिन्तन?'

'हे जनार्दन!

जो ईष्ट भाव को मैं चाहूँ ,

उसको देने में समर्थ तुम!

बार-बार यही इच्छा मेरी,

प्रकट होने की योग शक्ति,

और विभूति,

तत्व रहस्य फिर से कहो,

अविचल भक्ति है योग साधना,

बार-बार सुनने की मेरी भावना |

अमृतमय वचन तुम्हारे,

तृप्त नहीं कर पा रहे |

उत्कण्ठा फिर-फिर हो रही,

प्यास निरन्तर बढ रही |'

श्री भगवान बोले

'हे कुरुश्रेष्ठ!

मेरे विस्तार का अन्त नहीं |

सम्पूर्ण विश्व मेरा स्वरुप है,

ईश्वर का ही रुप है |

हर प्राणी-हर वस्तु

जड़ हो या हो चेतन,

वह ईश्वर की दिव्य विभूति |

अनन्त विभूतियों के योग से

तेज-बल-विद्या-ऐश्वर्य-

कान्ति और शक्ति का विकास हो |

विस्तार का मेरे अन्त नहीं

फिर भी जो कुछ प्रधान,

उसे मैं कहता हूँ |

हे गुडाकेश !

निद्रा पर विजय पा चुके,

अज्ञान रुपी निद्रा पर भी विजय पाओ |

मेरे भाव समझो

मेरे उपदेश धारण करो |

समस्त प्राणी जगत के हृदय में

स्थित चेतन स्वरुप आत्मा हूँ |

समस्त प्राणी का सृजन, पालन

और अन्त भी मैं हूँ |

प्राणी मुझसे ही उत्पन्न होते,

मुझमें ही स्थित रहते

और

मुझमें ही लीन हो जाते |

अदिति के बारह पुत्रों में,

श्रेष्ठ पुत्र विष्णु भी मैं हूँ |

समस्त ज्योतिपुन्जों में

ज्योर्तिमय सूर्य भी मैं हूँ |

उन्चास वायु देवताओं का तेज भी मैं हूँ |

सत्ताईस नक्षत्रों का स्वामी,

सम्पूर्ण तारा मण्डल का राजा

चन्द्रमा भी मेरी ही विभूति है |

मधुर संगीतमय,

रमणीय स्तुतियों से युक्त

सामदेव भी मैं हूं |

देवों के राजा इन्द्र भी

मेरा ही स्वरुप है |'

'चक्षु, श्रोत्र, त्वचा, रसना,

ध्राण, वाक, हाथ, पैर,

उपस्थ, गुदा और मन,

इन ग्यारह इन्द्रियों में

मन राजा |

दस शेष इन्द्रियों का स्वामी प्रेरक

सूक्ष्म और श्रेष्ठ |

इस जीवन के हर भाव में

'मन' प्रधान,

यह मन भी मैं हूँ |

समस्त प्राणियों की

चेतना शक्ति भी मैं हूँ |'

'हर','बहुरूप ', 'त्रयम्बक',

'अपराजित', 'वृषाकपि',

'शम्भु', 'कपर्दी', 'रैवत',

'मृगव्याध', 'शर्व' और 'कपाली'

ये ग्यारह रुद्र कहलाते |

इन के राजा शम्भु 'शंकर' हैं |

वह 'शम्भु' भी मैं हूँ |'

'यक्ष और राक्षसों का राजा

कुबेर है |

वही उनमें श्रेष्ठ है |

धन का लोकपाल कुबेर भी मैं हूँ |

'धर', 'ध्रुव'

'सोम', 'अहं'

'अनिल', 'अनल'

'प्रत्यूष' और 'प्रयास'

है आठ वसु,

इनका राजा 'अनल' भी मैं हूँ |'

'सुवर्ण-रत्नों का भण्डार,

नक्षत्र और द्वीपों का केन्द्र

सुमेरु पर्वत भी मैं हूँ |'

'देवताओं का कुल पुरोहित,

विद्दा-बुद्धि में सर्वश्रेष्ठ

बृहस्पति भी मै हूँ

'हे पार्थ!

समस्त सेनापतियों में प्रधान,

स्कन्द है प्रधान,

महादेव पुत्र कार्तिकेय भी यही,

यह मेरा ही स्वरुप जान |'

'सब जलाशय

जिसमें समा जाते,

उसे ही वे राजा कहते,

वह समुद्र भी मैं हूँ |'

'मैं महर्षियों में भृगु ऋषि,

शब्दों में एक अक्षर 'ओंकार' हूँ |

यज्ञों में जपयज्ञ हूँ |

स्थिर रहने वालों में हिमालय

पहाड़ हूँ |'

'मैं वृक्षों में पीपल हूँ,

देवर्षियों में नारद मुनि,

गन्धर्वो में चित्ररथ,

और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ |'

'समुद्र मन्थन से अमृत के संग

उच्चै:श्रवा की उत्पत्ति हुई,

इसीलिए वह अमृत तुल्य माना गया |

वह घोड़ों का राजा उच्चै:श्रवा भी मैं हूँ |

हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत भी मैं हूँ |

और मनुष्यों का राजा भी तू

मुझको जान |'

'मैं शस्त्रों में वज्ञ,

गायों में कामधेनु हूँ |

शास्थ-विधि से सन्तान उत्पत्ति का हेतु

कामदेव भी मैं हूँ | |

और सर्पो का राज वासुकि भी मैं हूँ | |

मैं नागों में शेषनाग,

जलचरों का अधिपति वरुण देव हूँ | |

पितरो में प्रधान अर्यमा मै हूँ |

और दण्ड-न्याय-धर्म से युक्त

यमराज भी मैं हूँ |

'मैं दिति वंशज दैत्यों में,

सर्वसदगुणसम्पन्न, परम धर्मात्मा,

श्रद्धालु, निष्काम और अनन्य प्रेमी

भक्त

प्रहलाद हूं |'

'गणना का आधार समय मैं हूँ |

पशुओं में मृगराज सिंह भी मैं हूँ

और पक्षियों में गरुड भी मैं हूँ |

तिव्र गति युक्त पवित्र वायु भी मैं हूँ |

शास्त धारियों में श्री राम हूँ,

और मछलियों में मगरमच्छ भी मैं हूँ |

नदियों में पवित्र गंगा हूँ |'

'हे अर्जुन!

सृष्टियों का आदि,

मघ्य और अन्त भी मैं हूँ |

मैं विद्याओं में आध्यात्म विद्या,

वाद-विवाद करने वालों में

तत्व-निर्णायक वाद भी मैं हूँ |'

'स्वर-व्यंजन आदि जितने अक्षर,

उन सबमें आदि सबका है 'अकार'

वही सभी में व्याप्त है |

समस्त वाणी अकार है |

इस कारण अकार सब वर्णो में श्रेष्ठ है |

वही मेरा रुप है |'

'द्वन्द्व-समास में दोनों पर्दों की

प्रधानता होती,

उसे अन्य समासों से श्रेष्ठ करती,

मैं वही द्वन्द्व-समास हूँ |

'मैं काल का भी महाकाल हूँ |

इसका क्षय नहीं होता,

इसीलिए अक्ष्य कहलाता |'

'मैं विराट रुप धारण कर

सबका धारण-पोषण करता,

मैं सर्वव्यापी, सब ओर मुखवाला,

विराट-विश्वरुप हूँ |'

'मैं मृत्युरूप होकर

सबके अन्त समय में आता,

मैं जन्म भाव लिए

प्राणी को बार-बार जन्म करवाता |

उत्पत्ति का हेतु भी मैं हूँ,

उत्पत्ति का स्वरुप भी मैं हूँ |'

'मैं स्त्रियों में श्रेष्ठ

कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति

मेधा, धृति और क्षमा हूँ |

गायन करने योग्य 'बृहत् साम' भी

मैं हूँ,

छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूँ,

मासों में प्रथममास मार्गशीर्ष

मैं हूँ

और ऋतुओं में बसन्त ऋतु

मैं हूँ |'

'मैं छल करने वालों में जुआ,

प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ |

मैं विजयी होने वालों की विजय हूँ,

निश्चय करने वालों का निश्चय हूँ

और सात्विक पुरुषों का सात्विक

भाव हूँ |'

'मैं अजन्मा-अविनाशी-सर्वशक्तिमान

पूर्णब्रह्म परमेश्वर भी हूँ

और

वृष्णिवंशी वासुदेव,

तेरा सखा कृंष्ण भी मैं हूँ |

'मैं ही पाण्डवों में

वीर धनन्जय अर्जुन,

मुनियों में वेदव्यास

और कवियों में

शुक्राचार्य कवि भी

मैं हूँ |'

'धर्म का त्याग कर

अधर्म में प्रवृत

उच्छृंखल मनुष्यों को

पापाचार से रोक कर

सत्कर्म में प्रवृत

करने वाला दण्ड भी मैं हूँ |'

'मैं वो दमन शक्ति हूँ

जो न्यायपूर्वक

कर्मपालन में लगाती |

मैं युद्ध में जीत

के इच्छा वाले योद्धाओं की

नीति हूँ |'

'मैं गुप्त रखने वाले भावों

का रक्षक मौन हूँ |

मैं ज्ञान वानों

का तत्व ज्ञान हूँ |'

'और हे अर्जुन!

सब प्राणियों की उत्पत्ति का

कारण भी मैं हूँ |

समस्त चर-अचर

प्राणियों का परम आधार हूँ |

मैं ही सब में व्याप्त हूँ |'

'हे परन्तय!

मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं |

कोई सीमा नहीं

क्योंकि ये भाव असीम है |

जैसे जल-वायु-आकाश

में असंख्य परमाणु क्षेत्र हैं,

असंख्य ध्वनि क्षेत्र हैं

वैसे ही मेरा अस्तित्व,

मेरी विभूतियाँ

असंख्य हैं |

उनका कोई भी पार नहीं पा सकता |

अंश मात्र वर्णन ही

सम्भव था,

वह मैंने तुमको कह दिया |'

'इसके अतिरिक्त

जो कोई भी प्राणी

य जड़ वस्तु

ऐश्वर्य सम्पन्न

शोभा-कान्ति जैसे गुणों से

सम्पन्न है,

बल, तेज, पराक्रम जैसी शक्ति से

युक्त है,

उस प्राणी या

उस वस्तु को तुम

ईश्वर के तेज का अंश मानो |

उसे ईश्वर ही जानो |'

'एक ही है

जो अनन्त है,

असीम है,

अव्यक्त है |

हे अर्जुन!

एक तत्व ही मन में धारण करो |

ईश्वर की योगशक्ति को समझो |

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वर के

एक अंश में व्याप्त है |

जो कुछ है, वह ईश्वर से है |

जो हो रह है, वही ईश्वर है |'

11) **विश्वरुप दर्शन योग**

अलौकिक भाव सुनकर

अर्जुन कृतज्ञता से बोला

'कृतज्ञ हूं आपका

जो मेरा अनुग्रह स्वीकार किया |

मैं योग्य नहीं था

फिर भी परम् गोपनीय ज्ञान कहा |

अज्ञान मेरा अब दूर हुआ

ईश्वर का रुप मैं जान गया |'

'हे कमलनेत्र!

प्राणी की उत्पत्ति-प्रलय का भाव

मैं जान गया,

मैं जान गया अविनाशी महिमा को |

हे परमेश्वर |

आप सर्वसमर्थवान हैं |

शक्ति-बल-वीर्य-तेजयुक्त,

असीम-अनन्त ज्ञानवान हैं |'

'सुना, समझा

अब इच्छा है इस विराट रुप को

देखने की |

हे प्रभो!

प्रबल लालसा मेरे मन की शांत करो |

हे योगेश्वर!

अपने सामर्थ्य से अधिकार दो,

अविनाशी रुप के दर्शन दो |'

परम श्रद्धलु,

परम प्रेमी अर्जुन

के सुनकर वचन,

श्री भगवान बोले

'हे पार्थ!

उठो! चलो, देखो

मेरे असंख्य रुपों का दर्शन देखो!

देव-मनुष्यों की भिन्न-भिन्न

आकृतियां देखो!

एकता में स्नेकता देखो!

भिन्न-भिन्न रुपों में एकरसता देखो!

जाति-वर्णो के विभिन्न

रुप देखो!'

'देखो! मेरे नए-नए रूप देखो!

असंख्य भाव हैं मेरे,

पर सबमें एक भाव देखो!

मेरे रुप अनेक,

मेरे कर्म अनेक

पर फिर भी मैं एक!

इस आलौकिक रुप को देखो!

हे भरतवंशी अर्जुन!

मेरे रुपों में सब विराजमान |

मेरे रुपों में देव-ऋषि-मुनि

सब विद्यामान |'

'अदिति पुत्र द्वादश,

आठ वसु

और रुद्र एकादश सब विद्यमान |

दोनों अश्विनी कुमारों को देख |

आश्चर्यमयी उन्चास वायु देवताओं

को देख!

संशय रहित होकर

देख! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देख!

जो कुछ देखने की इच्छा है,

उसे मेरे समग्र रुप में देख!'

'भूत-भविष्य ओर वर्तमान,

मेरे रुप में सब हैं विद्यमान!

क्या रुप है ईश्वर का!

क्या भाव है ईश्वर के!

हम ईश्वर को सर्वत्र देखकर भी,

नहीं देख सकते!

हम जानकर भी ईश्वर को

नहीं जान पाते!

भाव बहुत सरल है

पर इन्हें कठिन समझते!

एक ईश्वर है,

अंश बहुत हैं विद्यमान!'

'एक ईश्वर,

नित नए रुप रचे, रचे नित नए

विधान |

हर भाव ईश्वर है,

हर रुप ईश्वर है,

ईश्वर समझने की बात है,

ईश्वर जानने की बात है

ईश्वर स्वयं होकर भी

नहीं होता विद्यमान |'

विरक्त है,

निर्लिप्त है,

फिर भी वही मेरा ईश्वर है!

'हे अर्जुन!

योगशक्ति से ही

तू मेरा रुप समझ पाएगा,

दिव्य नेत्रों से ही

तू मेरा रुप देख पाएगा |

यह दिव्य दृष्टि मैं तुझे

प्रदान हूं करता,

यही तुझे ईश्वरीय योगशक्ति

को प्रत्यक्ष दिखाएगी |

यही दिव्य दृष्टि

तुझे ज्ञान का भण्डार प्रत्यक्ष दिखाएगी |'

युद्ध में हो रही

इस लीला को संजय देख रहा था |

राजा धृतराष्ट्र को

सब वृतान्त कह रहा था |

बोला संजय-'हे राजन!

श्री कृंष्ण हैं स्वयं ही दिव्य पुरुष

वे ही हैं परमेश्वर |

परम ज्ञानी, परम योगी,

पापों का नाश करने वाले ,

दु:खों को हरने वाले,

अर्जुन क्या,

मैं भी कृतार्थ हो उठा,

ईश्वर के अलौकिक-दिव्य तेजमय

रुप का दर्शन पा लिया |'

'एक रुप

में दिखते हैं रुप अनेक!

मुखमण्डल ऐसा कि

असंख्य मुखों-सा होता प्रतीत!

नेत्र एक सूर्य सदृश,

नेत्र एक चन्द्र सा,

अनेक नेत्र, नेत्रों में दिखते!

दिव्य दर्शन,

हर क्षण नया परिवर्तन!

विराट भाव के अदभुत दर्शन!

दिव्य भूषणों से सजे हुए,

दिव्य मालएं धारण किए,

वस्त्रों का है कठिन वर्णन

दिव्य गन्ध का लेप किए,

शस्त्र अनेकों धारण किए,

विराट रुप में, सर्वत्र दृष्टिगत

श्री कृंष्ण हुए !'

'हजारों सूर्य एक साथ

नहीं कर सकते ऐसा दिव्य प्रकाश!

अनित्य-भौतिक-सीमित हैं सब

प्रकाश पुन्ज,

ईश्वर का स्वरुप

नित्य-अलौकिक-दिव्य-अपरिमित

प्रकाशमयी!'

'हे राजन!

पाण्डु पुत्र अर्जुन ने

सम्पूर्ण विश्व रुप को,

एक साथ,

पृथक-पृथक रुप में

देवों के देव श्री कृष्ण भगवान

के रुप में स्थित देखा!

यह विराट रुप आश्चर्यमयी!'

अर्जुन आश्चर्य युक्त हुआ,

समस्त शरीर पुलकित हो उठा |

श्रद्धा-भक्ति से नतमस्तक

होकर, कृतज्ञं भाव युक्त वचन वह

बोला,

'हे देव!

आश्चर्य चकित

सम्पूर्ण विश्व मैं देख रहा!

एक रुप में अनेक रुप मैं देख रहा!

सभी प्राणियों को एक साथ,

सभी देवताओं को आत्मसात

किए देख रहा!'

'कमल पर बैठे ब्रह्मा को,

महादेव, ऋषियों को,

दिव्य रुप सभी,

प्राणी-पशु-पक्षी

और दिव्य सर्पो को भी देख रहा!'

'हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामी!

अनन्त रुप हैं,

असंख्य बाहु-पेट-भुजा-मुख,

नेत्र अनेक मैं देख रहा |

विराट रुप ऐसा कि

आदि नहीं, मध्य नहीं

न अन्त कहीं दिखता है!'

'कहीं मुकुट धारण किए,

कहीं गदा युक्त,

कहीं चक्र सुदर्शन हाथ लिए!'

'प्रकाश मान तेज के पुन्ज बने,

अग्नि से प्रज्ज्वलित,

सूर्य सदृश ज्योति युक्त हो!

निकट होकर भी,

लगता है बहुत दूर हो!

दूर दिखते हो

मगर लगता है मेरे भीतर भी तुम हो!

मेरे आगे भी तुम हो,

मेरे पीछे भी तुम हो,

जिधर देखता हूं

तुम ही तुम हो!

यह प्रेम भाव मेरा

अतुलनीय है!

रुप तुम्हारा अतुलनीय है!'

'हे परमेश्वर!

एक ओंकार तुम्हीं हो

तुम परमब्रह्म परमात्मा हो!

परम आश्रय जगत के हो,

अनादि धर्म के रक्षक हो!

अविनाशी तुम,

तुम्ही सनातन पुरुष हो!'

'विरात रुप है आपका,

असीम भाव में सब कुछ समाया |

उत्पत्ति,

स्थिति वृद्धि-क्षय-परिणाम

और विनाश रुप

के विकारों से रहित हो!

बल-वीर्य-सामर्थ्य-तेज

की सीमा नहीं कोई,

जिधर देखता हूं

अनन्त भुजाएं लिए खड़े हो!

असंख्य मुख,

चन्द्र-सूर्य सम नेत्र हैं दिखते!

प्रज्ज्वलित अग्नि-सा प्रकाश

और तेज युक्त सारा विश्व है दिखता!'

'हे महात्मन!

विस्तृत रुप में सभी दिशाएं

स्वर्ग लोक-पृथ्वी की सीमाएं

सभी व्याप्त दिखती हैं |

यह अदभुत और उग्र रुप ऐसा

कि स्वर्ग-मृत्यु और अन्तरिक्ष

में स्थित सब जीव व्यथित से दिखते है!'

'देव समुदाय सभी

आपके विराट रुप में उपस्थित हैं!

कुछ भयभीत हुए,

कुछ जोड़े हातह्,

नाम-गुण की महिमा करते!

महर्षि-सिद्ध योगी सभी

कल्याण मयी भावों से

स्तुति आपकी करते दिखते |

विस्मित भाव से देख रहे,

रुद्र ग्यारह और बारह आदित्य,

आठ वसु और साध्य देव सभी!'

'रुप आपका, महिमा ऐसी,

अदभुत भाव से आश्चर्य चकित है,

विश्वदेव, अश्विनीकुमार,

वासुदेव, पितर समुदाय,

गन्धर्व-यज्ञ-राक्षस और सिद्धों के समुदाय!'

'हे महाबाहो!

असंख्य मुख, नेत्र देख,

अनगिनत हाथ-जंघा-पैरों को देख

उदर अनेक, विकराल भाव से

व्यथित सभी, मैं भी व्याकुल!'

'हे विष्णो!

कहां सौम्य मुखमण्डल,

चेहरे पर धीमी सी मुस्कान!

और कहां विकराल रुप यह नभ छूता,

वर्ण अनेक, कैसे मुख चारों ओर!

विशाल नेत्र हैं दैदीप्यमान!

अन्त:करण भयभीत हुआ

मैं धीरज-शांति खो रहा!'

'हे देवेश!

भूल दिशा ज्ञान मैं भटक रहा,

विकराल रुप देख दिग्भ्रमित हुआ |

अग्नि समान प्रज्ज्वलित मुखमण्डल देख

जल रही देखो मेरी त्वचा!'

'हे जगन्नाथ!

दया करो, के दया निधान!

लौटा दो अब वही सौम्य मुस्कान!'

'मैं देख रहा,

भयभीत हुआ!

धृतराष्ट्र पुत्र सभी,

राज समुदाय सभी,

भीष्म पितामाह, गुरु द्रोणाचार्य, कर्ण

और बहुत से यौद्धा हमारे,

विकराल-भयानक दाढओ से ग्रसित

मुखों में आपके प्रवेश कर रहे!

कई शूरवीर चूर्ण सिरों से

दांतो में आपकी फंसे हुए |

यह कैसी लीला है!

जो हुआ नहीं

वह भी हो रहा!'

'समुद्र की ओर जैसे नदियों का

जल दौड़ता,

वैसे ही नरलोक के वीर सभी

प्रज्ज्वलित मुखों में आपके

दौड़ रहे!

अग्नि मोह से आकर्षित हो

जैसे पतंगा नष्ट हो जाता,

वैसे ही यह शूरवीर हैं,

मोह में कैसे फंसे हुए,

दौड रहे हैं मुख की ओर!

कैसा है विकराल रुप |

उग्र भाव में ग्रास बने हैं

वीर सभी!'

'हे विष्णो! यह कैसी लीला है,

अतृप्त भाव से आप भी

उन्हें बार-बार चाट रहे हैं |

यह उग्र प्रकाश पुन्ज विलक्षण,

जगत् समग्र सन्तप्त विलक्षण!'

'हे देवों में श्रेष्ठ!

मुझे परिचय दो इस रुप का!

मुझे परिचय दो इस समग्र रुप का!'

'हे देव! आपको नमस्कार!

मन प्रसन्न करो अपना,

भयभीत हूं परिचय दो अपना!

कैसी प्रवृति, कैसा भाव यह

कैसा रहस्य यह,

उत्सुक हूं, परिचय दो अपना!'

श्री भगवान बोले

'एक रुप मेरा जन्मदाता का,

एक रुप मेरा आश्रयदाता का,

यह रुप मेरा महाकाल का!'

'जिन प्राणियों का अन्त समय आया है,

वे सब अब जाएंगे!

कैसे-कब, सब निश्चित है,

मेरे रुप में सब समाएंगे!

तुम कायरता से युद्ध छोड़ रहे,

स्वजन देख मुंह मोड रहे |

यह जानो कि मरण तो सबका

निश्चित है |

रक्षा अब नहीं हो सकती,

इन्हें कालग्रास अब बनना है!'

'जान इस मृत्यु-योग को,

उठ! धैर्य दिखा!

युद्ध कौशल दिखा!

यश प्राप्त कर

और शत्रुओं पर विजय पा!

राज्य-सुख भोग

धन-धान्य युक्त अब राजधर्म निभा!'

'एक ओर किसी का अन्त लिए है,

दूसरी ओर तेरे लिए

राज्य-सुख हाथ फैलाए

खड़ा है |

देखो! कैसी ये माया है!

किसी के लिए

एक ही क्षण में विध्वंस

और

किसी के लिए

सब सुख लिखा है!'

'यह सुख-दु:ख का चक्र,

यह जन्म-मृत्यु का चक्र,

चल रहा निरन्तर,

मेरे भाव में देखा तुमने,

इस विराट रुप में सब

उपस्थित!

यही भाव तुझे समझाया है,

जानकर यह सब,

उठकर युद्ध कर!'

'जो शूरवीर देखे तुमने

निकट भविष्य में मेरे हुए,

उठो हे सव्यसाची!

निमित्त बनो मेरे,

दोनो हाथ से बाण चलाकर

धर्म रक्षा हेतु युद्ध करो!

यह धर्म पालन तुझे

मेरा माध्यम ही तो बना रहा,

तू जिस प्राणी का मरना निश्चित,

उसे ही तो मारने जा रहा!'

'द्रोणाचार्य, भीष्म पितामाह

जयद्रथ और कर्ण

और बहुत से योद्धाओं का अन्त

कै निश्चित!

भय से रहित बन,

सब बैरी लोग काल के ग्रास बनेंगे |

सब पर तेरी विजय निश्चित,

उठ! संशय रहित बन,

मोह-ममता रहित बन,

धर्म के नाम पर कर्म निभा,

अर्जुन! उठ! निर्णायक युद्ध

का बिगुल है बज उठ!'

संजय तब बोला

'हे राजन!

वचन सुनकर केशव के,

सूर्य के समान प्रकाशमान

दिव्य मुकुटधारी

अर्जुन हाथ जोड़,

भयभीत हुआ

नतमस्तक होकर

श्री कृष्ण को वरुणामयी वाणी से बोला

'हे अन्तर्यामी!

एक ओर जग हर्षित होता,

एक ओर जग प्रेम में डूबा,

दूसरी ओर तेरा रुप भयंकर,

दौड़ रहे सब राक्षसजन इधर-उधर!

यह मेरे लिए है रुप रचा

यह रूप भयंकर मैंने देखा,

लीला तुम्हारी का रहस्य खुला |

यह विराट रुप वास्तव में जग है,

यह भाव सभी इस जग की दिनचर्या

यह अदभुत स्वरुप देख

मैं भयभीत हुआ!'

'हे महात्मन!

हे जगत के परम आधार!

जगत की रचना करने वाले

ब्रह्मा को तुमने बनया,

देव-ऋषियों का रुप रचा,

वे सब भी नतमस्तक है |'

'हे अनन्त! तू असीम है!

हे जगन्निवास!

तेरा अभाव नहीं हो सकता,

तू सत् आत्म भाव युक्त है,

तू ही असत् का रुप है

और तू ही सत्-असत्

से विरक्त भी है !'

'तेरा भाव समझने की बात् है |

तेरा रुप जानने की बत है |

तुझे पहचानने में एक क्षण भी

लग सकता,

और जन्म-जन्म तू समझ नहीं आता !'

'तू सच्चिदानन्दन परम ब्रह्मं,

तू अविनाशी सबका पालनहार,

तुझे बार-बार मेरा नमस्कार!'

'देवों के देव तुम्ही हो,

सनातन नित्य पुरुष परमात्मा तुम्हीं हो!

इस सृष्टि के परम आश्रय दाता तुम्हीं हो!

सृष्टि का भरण-पोषण तुम्हीं करते!

सृष्टि को प्रलय भाव में तुम्हीं ले जाते!

प्रलय में अपने अंश में सभी समेटे!'

'नित्य दृष्टा तुम्हीं,

सर्वज्ञ तुम्हीं

तुम्हारे सदृश नहीं कोई |

तेरा रुप जानने योग्य है!

तुझे समझना परम उद्देश्य है |

तू साक्षात परम परमेश्वर है!

तू मुक्त हुए पुरुषों की परम गति है,

तू परम धाम परमेश्वर है!

तेरा रुप अनन्त,

यह ब्रह्माण्ड है तुममें व्याप्त हुआ |

कहीं कुछ और नहीं

बस तेरा रुप ही अब दिखता |'

'तुम्हीं वायु हो,

तुम्हीं यमराज!

तुम्हीं अग्नि हो,

तुम्हीं वरुण-चन्द्रमा तुम्हीं हो,

तुम्हीं ब्रह्मा हो,

और तुम्हीं ब्रह्म के रचियेता हो!

तुम्हीं तुम हो,

तुम्हें मेरा कोटि-कोटि नमस्कार!

नमस्कार,

एक बार नहीं

बार-बार नमस्कार

नमस्कार!'

'हे अनन्त सामर्थ्य वाले ईश्वर!

सब दिशाओं में व्याप्त हो तुम|

तुम्हें मेरा नमस्कार,

तुम्हें आगे से, तुम्हें पीछे से,

ऊपर से, नीचे से,

दायें से, बायें से,

सब ओर से मेरा नमस्कार!'

'तुम सर्व रुप हो,

हर अणु में व्याप्त हो,

हर भाव का नया रुप हो |'

'अज्ञानता से मैं

सखा समझ केवल अपना,

प्रेम से, प्रसाद से 'हे कृष्ण!'

'हे सखे!' 'हे यादव!'

कहता रहा |

हे अच्युत! बिना जाने

बिना सोचे,

मैंने हठात विनोद भाव से

अपराध किया!

बिना जाने, बिना पहचाने

मैं मूढमति

नहीं जान पाया |

चलते-फिरते,

उठते-सोते,

सखा जान अपराध किया,

मुझे क्षमा करो

हे जगन्नाथ!

मैं अज्ञान भाव में न जान सका |'

'जगत पिता हो,

सबके गुरु

अति पूज्यनीय हो |

हे अनुपम प्रभाव युक्त स्वामी!

इस सृष्टि की पालन हार

तुम सदृश कोई नहीं |

कौन है ऐसा जो तुलना कर पाए!

हे दयामय!

सखा जान मैंने तुलना की,

बार-बार मैंने दुष्टता की |

अब तुम्हीं क्षमा प्रदान करो,

अब तुम्हीं क्षमा प्रदान करो!'

'हे प्रभो!

पिता पुत्र के,

मित्र मित्र के,

पति अपनी प्रियतमा पत्नि के

अपराध सहन कर सकता,

वैसे ही मेरे अपराध भाव को

क्षमा करो !

प्रसन्न होकर

मेरा निवेदन स्वीकार करो!'

'मैं हर्षिट हो

आश्चर्यमयी यह रुप देखकर,

मैं व्याकुल भी हूं मन से,

इस विराट रुप को देखकर,

सौम्य रुप तुम्हारा, गुण, प्रभाव

मुझे हर्षित करता,

वही विकराल रुप मुझे व्याकुल करता |'

'लौट आओ, अपनी मुद्रा में!

मुझे वही सौम्य रुप दिखाओ!

मुझे वही सौम्य रुप दिखाओ!

मुझे वही चतुर्भुज रुप दिखाओ

मुझे परमधाम में स्थित अपना

विष्णुरुप दिखाओ |'

'हे देवेश!

हे जगन्नाथ!

प्रसन्न हो जाओ |

अपना सौम्य रुप दिखाओ |

हे विश्व रुप!

हे सहस्रबाहो!

मुकुट धारण किए,

हाथ में गदा-चक्र लिए,

सौम्य सी मुस्कान से,

अपने चतुर्भुज रुप में प्रकट

हो जाओ!'

देखो! भाग्य देखो

अर्जुन का!

ईश्वर का विराट रुप देखा,

ईश्वर का मनुष्य रुप देखा,

ईश्वर का सौम्य रुप भी देखेगा |

भक्ति में शक्ति कितनी होती!

भक्ति मे श्रद्धा से कैसे

कृष्ण रुप को पा सकते!

श्री भगवान बोले

'हे अर्जुन!

तुम मेरे प्रिय,

तुम मेरे सखा बने हो |

तुम्हारी भक्ति, तुम्हारी प्रार्थना

बनी थी सर्वोपरि,

तभी तुम्हे यह रुप दिखाय |

इस आलौकिक रुप से

न भय करो, न व्यकुल हो |'

'इस विराट रुप के दर्शन

योग शक्ति से होते हैं !

इस विराट रुप के दर्श न दिव्य दृष्टि

से होते हैं |

यह रुप दिव्य प्रकाश का पुन्ज है |

पर यह भी पूर्ण नहीं |'

'यह बस केवल एक अंश है |

हे अर्जुन!

मनुष्य लोक में

यह रुप फिर से न कोई देख पाएगा |

न वेद पढकर ,

न यज्ञ करके,

न दान से, न ज्ञान से |

न वर्ण-धर्म के पालन से,

न उग्र भाव धारण करके

अब कोई इस रुप के दर्शन

न कर पाएगा |

अब व्याकुल मत हो!

मूढ भाव अब त्याग दो!

भय रहित बन,

प्रीतियुक्त वही अर्जुन बन!

देख! मन कर अपना प्रसन्न,

देख! मेरा शंख-चक्र-गदायुक्त

चतुर्भुज रुप अब देख!'

और कृष्ण ने अपना

चतुर्भुज रुप दिखाया |

सौम्य भाव में लौटकर

मनुष्य रुप धारण कर,

वासुदेव ने अर्जुन को

धीरज दिया |

अर्जुन भी

दर्शन पाकर सौम्य रुप

का शांत-चित्त

होकर बोला -

'हे जनार्दन!

मधुर-शांत यह सौम्य रुप

को फिर से देख कर,

मेरा चित्त स्थिर अब हो गया |

मैं स्वाभाविक स्थिति में लौट आया |

भय-व्याकुलता अब दूर हुई,

अपनी स्थिति में मैं लौट आया |'

श्री भगवन तब बोले,

'मेरा चतुर्भुज विष्णु रुप,

मायतीत, दिव्य गुणों से युक्त,

नित्य रुप का दर्शन भी दुर्लभ है |

देव पुरुष भी इच्छा रखते,

इस रुप को देखने की |

चह चतुर्भुज रुप

न वेदों से, न तप से,

न दान से, न यज्ञ से देख सकते |

यह अनन्य भक्ति से,

एकीभाव में स्थापित हो कर

प्रत्यक्ष दिखता है |'

'हे अर्जुन!

जो प्राणी कर्तव्य कर्म करता,

ममता आसक्ति अहम् त्याग

सब मुझको समर्पित करता,

जो भक्ति में शक्ति पाता,

वैर भाव मन में न रखता,

वह अनन्य भक्ति पूर्ण

प्राणी नित्य

मुझे पा लेता |

वह मेरा ही रुप बन

मुझमें आत्मसात हो जाता |'

12) **भक्ति योग**

'हे प्रभु!

भक्ति में शक्ति है,

यह अब जान गया |

जिज्ञासा है भक्ति-भाव को जानने की |

जिज्ञासा है उपासना विधि जानने की |

कहीं निर्गुण-निराकार का महत्व

मुझे बताया है |

कहीं सगुण-साकार का रुप

मुझे समझाया है |'

'प्रेमी भक्त

निश्छल भक्ति से

भजन-ध्यान में लगे हुए,

निरन्तर सगुण रुप परमेश्वर का

भजते हैं |

प्रेमी भक्त ऐसे भी हैं

जो अतिश्रेष्ठ भाव से

अविनाशी सच्चिदानन्दन

निराकर-ब्रह्म को भजते हैं |

कौन उत्तम?

कौन अति उत्तम?

अतुलनिय भाव की

तुलना कैसी?

यह मेरी जिज्ञासा है,

निर्गुण भाव

और

सगुण भाव

में भाव कौन सा श्रेष्ठ है?'

श्री भगवन बोले,

सुनकर अर्जुन के वचन,

'योगियों में उत्तम योगी

वही होता

जो समस्त कर्मो में रत रहकर भी,

सर्व-सर्वत्र प्रभु चिन्तन में लीन रहता |

तन्मय होकर ईश्वर के गुण-प्रभाव

में मन स्थापित करता |'

'ईश्वर की सत्ता में, वचनों में,

शक्ति में

अतिशय श्रद्धा रखता, उसी पर निर्भर रहता |

सगुण रुप मन में होता,

उसी रुप में ध्यान स्थापित होता |'

'जो पुरुष मन-इन्द्रियों को वश में करके,

मन-बुद्धि को स्थिर करके

सर्वव्यापी-नित्य-अचल-निराकार ब्रह्म की,

समभाव युक्त होकर

उपासना करते,

सभी प्राणियों से समहित भावना रखते,

वे योगी ही मुझे प्राप्त होते |'

'सगुण रुप ईश्वर का,

अनन्य भक्ति से प्राणी

सहज प्राप्त कर लेता |

वह सगुण उपासक

ईश्वर को तत्व रुप में जानता |

वह ईश्वर के दर्शन

सहज ही पा लेता |'

'निर्गुण-उपासक

योग भाव से

अनेकता में एकता का भाव देखता |

ईश्वर का दर्शन पाने को

वह उत्सुक न होता |

उसे निराकार ब्रह्म से आगे

ईश्वर भाव कर्म-ज्ञान-लोकहित ही लगता |'

'निर्गुण-ब्रह्म का तत्व गहन है |

बुद्धि जिसकी शुद्ध-स्थिर और सूक्ष्म

होती,

जिसमें अहंभाव नहीं होता

वही उसे समझ सकता |

वह विलक्षण बुद्धि-युक्त होता |'

'सच्चिदानन्दन निराकार ब्रह्म की उपासना

है कठिन बहुत,

देहाभिमान में स्थित पुरुष

यह भाव कठिनता से पाते |

सगुण-उपासना है सरल,

ईश्वर पर रहता योगी निर्भर |

ईश्वरीय शक्ति से प्रार्थना होती,

सहायता भी ईश्वर से मिलती |'

'ईश्वर पर निर्भर होकर

प्राणी यदि निर्भय-निराकार रहता,

दु:खों को भी ईश्वर का प्रसाद

समझ कर

ग्रहण करता,

दु:ख को सुख रुप में लेता,

ईश्वर की शरण में रहता,

परमप्रेमी, परमगति,परम सुहृद

समझ,

कर्म भाव से युक्त रहकर सब

सगुण रुप परमेश्वर को

अर्पण कर देता

वह भक्तिभाव में ईश्वर पा लेता'

'हे अर्जुन!

मृत्यु रुप संसार सागर से

उद्धार भी मैं करवाता |

प्रियजन मेरे, सखा बनकर

भक्तों का उद्धार मैं करता |'

'जगत यह व्याप्त

जिसके हृदय में,

जो दयालु-सर्वत्र-सुहृद

गुणों का सागर,

उस परम दिव्य,

आनन्दमय,

सर्वशक्तिमान

परमेश्वर में मन को लगा |

उसी में बुद्धि तो टिका |'

'संशय मत कर |

सदा-सर्वदा-सर्वत्र

अटल निश्चय रख |

ईश्वर भाव तभी समझेगा,

ईश्वर में तू तभी स्थित होगा |'

'मन अचल-अटल

स्थापित करो |

भटके मन अभ्यास करो,

बार-बार अभ्यास करो |

हे अर्जुन!

अभ्यास भाव में एक ही

भाव स्थापित कर,

ईश्वर को पाने की

बस इच्छा कर |'

'हे अर्जुन!

मन ईश्वर में अचल स्थापित करना

कठिन,

अभ्यास योग भी लगे कठिन,

तब ईश्वर को तू परम आश्रम मान

श्रद्धा-प्रेम से मन-वाणी और

शरीर से

शास्त्रविहित कर्मो की राह पर चल

कर्तव्य समझ कर कर्म निभा

ईश्वर भाव को पाने क यह

सरल साधना अपना |'

'और यदि कर्म योग पर आश्रित

राह भी कठिन लगे

तब सब कर्मो में निहित

ममता-आसक्ति-कामना

से विरक्त हो

कर्मो से फल की इच्छा का त्याग कर |'

'समस्त कर्मो को ईश्वर में

अर्पित करना,

ईश्वर के लिए समस्त कर्म करना,

और सब कर्मो के फल का त्याग

करना,

ये तीनों ही हैं कर्म योग |

तीनों ही राह हैं ईश्वर भाव को पाने की |'

'केवल कर्म योगी की भावना

और

कर्म की प्रणाली का भेद है |

समस्त कर्म ईश्वर को

अर्पित करना

और

ईश्वर के लिए समस्त कर्म करना

इनमें भक्ति भाव की प्रधानता |'

'सर्व कर्मफल त्याग में केवल

फल-त्याग की प्रधानता है |

कर्म का मर्म समझे बिना

अभ्यास करना व्यर्थ |'

'विवेकहीन अभ्यास

अभ्यास नहीं कहलाता |

ऐसे अभ्यास से

विवेक ज्ञान श्रेष्ठ होता |

कर्म का मर्म जान लेने पर

ज्ञान जाग्रत हो उठता |

ज्ञान से अभ्यास करना

ही सिद्ध होता |'

'वैसे ही ज्ञान से

श्रेष्ठ ध्यान होता |

ईश्वर को श्रेष्ठ मानकर

अपने सब कर्म उसी पर

अर्पित कर देता |

उसके ध्यान योग में

तत्व ज्ञान और अभ्यास

का समन्वय हो जाता |'

'अभ्यास-ज्ञान-ध्यान

से भी उत्कृष्ट

कर्मो के प्रति फल के त्याग

की भावना होती |

इस कर्म फल त्याग की

भावना से ही परम शांति मिल जाती |

ऐसे में जिस कर्मयोगी

की भावना

ईश्वर को सर्वश्रेष्ठ मान

निष्काम भाव की होती,

वह स्वयं ही

अभ्यास में लीन रहता

तत्व ज्ञान भाव जाग्रत रखता

और ध्यान में उसके

ईश्वर का स्वरुप उपस्थित रहता |

'जो पुरुष

प्राणियों से द्वेष-भाव नहीं रखता,

स्वार्थ रहित सम-प्रेम भाव रखता,

आकांक्षा रहित दया भाव रखता,

ममता से मन ग्रस्त न करता,

अहम् भाव से विलग रहता,

सुख पाकर आसक्त न होता,

दु:ख देख विरक्त न होता,

वह समभाव युक्त रहता |

ऐसा योगी सदा सन्तुष्ट रहता,

क्षमावान होता,

अहित चाहने वाले का भी हित सोचता |'

'मन-इन्द्रिय सभी वश में होती,

ईश्वर में दृढ-निश्चय रखता,

मन बुद्धि ईश्वर को समर्पित कर देता

वही भक्त ईश्वर का प्रिय बन पाता |

श्रद्धा ईश्वर पर

प्रेम ईश्वर से

जिस भक्त को सब ईश्वरमयी लगता,

वह जाने-अनजाने

प्राणी से दु:ख-संताप-भय-क्षोभ

न रखता,

सबकी सेवा,

परम हित भाव सबसे रखता |

वह दया-प्रेम की मूर्ति होता,

समभाव युक्त होता,

हर्ष-शोक-दु:ख-भय

का भाव न होता |

उद्वेग उसे विचलित

न करते,

प्रभु लीला में लीन रहता,

वह प्रिय भक्त मेरा कहलाता |'

'जीवन-निर्वाह में

प्रकृति-प्रेरित कर्म में लीन,

आकांक्षाओं से रहित,

बाहर-भीतर शुद्ध

द्वेष रहित,

समभाव बुद्धि युक्त,

पक्षपात से रहित,

विकार रहित

दु:ख की परिभाषा सुख समझे,

सहज भाव से कर्म करे

वह अभिमान रहित होकर

लोकहित भाव से

कर्म यज्ञ में जुटा रहे,

वही कर्म के आरम्भ से ही

त्याग भाव रखे

और मेरा प्रिय भक्त कहलाए |'

'ईष्ट वस्तु की प्राप्ति में,

अनिष्ट के वियोग में,

जो हर्ष भाव

का सर्वथा अभाव करे,

वह भक्त केवल

परम-प्रिय परमेश्वर

को सदा से साथ मान कर

उसी भाव में मग्न रहे |

सम्पूर्ण जगत ईश्वर का स्वरुप समझे,

ऐसे में किसी जड़-चेतन मे द्वेष न रखे |

ईश्वर भाव से प्रेम है जब,

द्वेष भाव कैसे रह सकता तब?'

'अनिष्ट भाव को पाकर

जो शक्ति नहीं करत,

ईश्वर का ही प्रसाद समझता |

जीवन का एक अनुभव माने,

कष्ट को कष्ट न मान,

शोक को शोक न समझ,

वह जीवन को ईश्वर का

भाव माने |

ऐसे में वह कामना,

शुभ-अशुभ

समस्त कर्मो में

ईश्वर भाव ही जाने |

वह स्वयं को कर्मो का

कर्ता भी न जाने |

वह कर्म भाव को

ईश्वरीय भाव ही माने |

ऐसा पुरुष त्यागी कहलाता,

वह भक्ति युक्त

मुझे परम प्रिय लगता |'

जब मन में विकार

नहीं होता,

जब मन समभाव युक्त होता,

तब कैसे

शत्रु-मित्र में,

मान-अपमान में,

सुख-दु:ख में,

सर्दी-गर्मी में

भेद लगे?

सब समभाव युक्त होता,

सब आसक्ति रहित होता |

बस प्रेम भाव मन में होता |'

'भक्त का नाम नहीं होता,

भक्त का शरीर नहीं होता,

भक्त अभिमान रहित होता,

भक्त ममत्व रहित होता |

वह केवल भक्त ही होता |

उसमें कुछ भेदभाव नहीं होता |

उसे सब ईश्वर ही लगता |

ऐसे में निन्दा

निन्दा नहीं लगती |

स्तुति में स्तुति भाव नहीं लगता |

उसे समभाव प्रेम ही दिखता |'

'वह मननशील,

कर्मो से सन्तुष्ट,

ममता-आसक्ति से रहित,

जो मिल जाए उसी में सन्तुष्ट रहता,

वह स्थिर बुद्धि-युक्त होता,

वह प्राणी मुझे प्रिय होता |'

'जो श्रद्धा युक्त प्राणी,

ईश्वर को सर्वव्यापी,

सर्वशक्तिमान मान,

ईश्वर के गुण-प्रभाव-वचनों

को परम प्रेम से

सहज होकर ग्रहण करे,

ईश्वर के धर्ममय

अंरत् को

निष्काम भाव से,

प्रेम भाव से ग्रहण करे

वह भक्त

अतिशय प्रेम

का पात्र बने |

वह मेरा परमप्रिय

कहलाए |'

13) **शरीर व आत्मा विभाग योग**

शरीर

और

आत्मा

परस्पर अत्यन्त विलक्षण |

शरीर-जड़-विकारी-क्षणिक-नाशवान,

आत्मा-चेतन-निर्विकार-नित्य

अविनाशी और ज्ञानवान |'

'शरीर दृश्य है,

प्रतिक्षण इसका क्षय होता है |

आत्मा दृष्टि है |

मन-बुद्धि-इन्द्रिय के विषयों क ज्ञाता है |

तत्व ज्ञानी इस आत्म तत्व को जानते

हैं,

वे शरीर को इससे विलग मानते हैं |' 'हे अर्जुन!

आत्मा-परमात्मा में भेद न मान,

आत्मा को तू मेरा ही अंश मान |

इस शरीर को हर कोई जान सकता,

यह उत्पन्न होता, नष्ट होता,

अनित्य और क्षणिक है |

जबकि आत्मा अत्यन्त विलक्षण,

नित्य-निर्विकार-शुद्ध व चेतन,

यह रुप नहीं बदलता |

अज्ञान ही एकत्व का बोध कराता |'

'आत्मतत्व को पहचान,

यह विलक्षणता ही

है वास्तविक ज्ञान |

यह मत मेरा मान |

आत्मा को शरीर से

सदैव विलग मान |'

'यह शरीर क्या है?

कैसा है ?

किन विकारों वाला है?

और

इस आत्मा के क्या हैं लक्षण?

कैसा प्रभाव?

यह भेद तुझे समझाता हूं |

पूर्ण ज्ञान से संसार भ्रम का नाश

हो जाएगा |

तुझे परमात्मा प्राप्ति का मार्ग

और स्पष्ट नजर आएगा |'

'मन्त्रों के दृष्टा,

शास्त्र-स्मृतियों के रचियता,

समस्त ऋषियों ने,

पुराण-ग्रन्थों में,

वेदमन्त्रों में,

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के तत्व की

विविध रुप से व्याख्या की है |

यह निश्चित भाव तुझे

मैं युक्तिपूर्वक

संक्षेप में सुनाता हूं |'

'पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और

आकाश,

इन पांच महाभूतों,

अहंभाव,

बुद्धि,

मूल प्रकृति,

और

वाक-हाथ-पैर-अपस्थ-गुदा,

और

श्रोत्र-त्वचा-चक्षु-रसना-ध्राण

इन दस इन्द्रियों,

और एक मन

और इन्द्रियों के पांचों विषय

यानि

शब्द-स्पर्श-रुप-रस-गन्ध

तथा

इच्छा-द्वेष-सुख-दु:ख,

स्थूल शरीर का पिण्ड,

चेतना और

धारण शक्ति,

यही इस शरीर के समस्त विकार,

और

यही संक्षेप में इस शरीर का वर्णन |'

'अब ज्ञान तत्व को जान,

ज्ञान पाने का सधन जान |

स्वयं को श्रेष्ठ समझना,

पूज्य मानना,

मान-प्रतिष्ठा-पूजा की इच्छा करना,

यह मानित्व कहलाता |'

'इस श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव,

जिसे इस भाव की अपेक्षा न रहे,

विरक्त हो जाए जो ऐसी आशा से

वह ज्ञान का योग पाए |'

'मान-प्रतिष्ठा-पूजा या

धन लोभ से

जो स्वयं को

धर्मात्मा-दानशील-ईश्वर भक्त-ज्ञानी

कह कर विख्यात करे,

धर्मपालन, भक्ति, योगसाधन,

व्रत-उपवास का ढोंग कर

प्रचार करे,

वह पुरुष दम्भी कहलाए |'

'जो अपने, ईश्वरीय तत्व के

भावों से

ज्ञान का प्रचार करे,

अपने ज्ञान की बीन न बजाए

वह इस दम्भाचरण से विरक्त हुआ

ज्ञानी कहलाए |

जो किसी भी प्राणी को

मन-वणी या शरीर से

कष्ट न दे,

मन से बुरा न चाहे,

कठोर वचन न कहे,

निन्दा-स्तुति न करे,

वह प्राणी अहिंसा का योगी,

सदा-सर्वदा

द्वेष-वैर से दूर रहे,

ऐसे की संगत पाकर

हिंसक प्राणी भी वैर भाव से

दूर हो जाए |

ऐसा मन ज्ञानवान ही पाए |'

'अपराधी को

दण्ड देने का भाव

मन में न रखे जो,

बस अपराधों से

प्राणी को मुक्त कराने

का ध्येय हो जिसका,

वह क्षमा भाव युक्त ज्ञानी

ज्ञान सिद्ध हो जाए |'

'साधक जो सरल-चित व्यावहार करे,

दांव-पेच-कपट-कुटिला का स्वयं में

अभाव कर पाए,

सहज-सरल-शांत चित्त प्राणी

मन-वाणी से निर्मल हो जाए |'

'विद्या-उपदेश ग्रहण कर

श्रद्धा से,

भक्ति से

गुरु का आदर करे |

वह गुरु भक्त सहज

ज्ञान का सधन पा जाए |'

'सत्यतापूर्वक शुद्धा व्यवहार से

द्रव्य की शुद्धि होती है |

ऐसे द्रव्य से ही बने अन्न से

आहार की शुद्धि होती होती है |

यथायोग्य शुद्ध व्यवहार से

आचरण की शुद्धि होती है |

जल व मिट्टी से

शरीर की शुद्धि होती है |

यह सब बाहर की शुद्धि है |'

'भीतर अन्त:करण से

छल-कपट

राग-द्वेष से रहित होकर

स्वच्छ मन ध्यान लगाना,

भीतर की शुद्धि कहलाता |'

'यह भीतर-बाहर की शुद्धि

प्राणी को ज्ञान भाव ही करवाता |

कष्ट-विपत्ति,

भय-दु:ख आ जाने पर भी

जो प्राणी न होता विचलित |

भय-लोभ-काम-क्रोध के

वश में होकर,

जो कर्तव्य कर्म से कभी न डिगता

उसका अन्त:करण स्थिर होता |

वह ज्ञान का ही भाव होता |'

'जो मन-इन्द्रियों को वश में

कर लेता,

वह विषय-विकारों में नहीं फंसता,

मन उसके अनुकूल कर्म में

लग जात,

उसका आज्ञाकारी बन जाता |'

'इस लोक-परलोक के

शब्द-स्पर्श-रुप-रस-गन्ध रुप

सब विषय पदार्थो

से जब प्राणी आसक्ति का अभाव

कर पाता,

देहाभिमान का सर्वथा अभाव कर पाता |'

'जन्म-मृत्यु

जरा-रोग सब दु:खदायी |

इसे सहज भाव में स्मरण कर जो

वैराग्य भाव उपस्थित रखे,

पुत्र-स्त्री, घर-धन में

आसक्ति का अभाव करे जो,

ममता का अभाव करे जो,

प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में सम रहे,

वह ज्ञान भाव से युक्त रहे |'

'ईश्वर से जो अनन्य भक्ति भाव रखे |

स्वार्थ-अभिमान-ममत्व का भाव न हो

भक्ति में,

ईश्वर का भाव सदा मन से रहे |

निर्मल-पवित्र-एकान्त भाव में,

वुयर्थ

व्यर्थ के शोर से

दूर रहे |

प्रमाद और विषयासक्त

पुरुषों से

विरक्ति भाव रखे,

आध्यात्म ज्ञान में

मन स्थापित करे

और

तत्व ज्ञान का

अर्थ

ईश्वर का रुप ही माने,

वह ज्ञानवान कहलाए |'

'वही ज्ञान की राह

जाने,

वही ईश्वर का भाव

समझ पाए |

इसके विपरीत सभी

अज्ञान रुप अन्धकारमयी हो |'

'अब ज्ञान से जानने योग्य

परमात्मा का स्वरुप समझ |

परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से

मनुष्य इस जन्म-मरण के बन्धन से,

इस संसार बन्धन से मुक्त हो जाता |

वह परम पद पाकर

परब्रह्म में लीन हो जाता |'

'प्रकृति यह सारी

और जीवात्मा यह अनादि है |

इसका स्वामी परब्रह्म पुरुषोत्तम

अनादि वाला |

प्रमाणों से सिद्ध जो हो सकता

वही 'सत्' कहलाता |

परमात्मा ही प्रमाण को सिद्ध करता,

वह इस 'सत्' सिद्धि से विलक्षन होता |'

'जिस वस्तु का अस्तित्व नहीं

वही 'असत्' कहलाती |

'वह' अवश्य है और वह है

तभी सबका होना सिद्ध होता |

ऐसे में परमात्मा इस 'सत्'

'असत्' के निरुपण से तटस्थ रहता |

वह सत् होकर भी सत् से तटस्थ रहता |'

'परब्रह्म परमात्मा

समग्र भाव युक्त होकर भी

अति सूक्ष्म भाव में रहता |

समग्र सृष्टि में हाथ-पैर फैलाए,

सब ओर नेत्र-सिर-मुख धारण किए,

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है उसका ध्वनि क्षेत्र |'

'यह ज्ञेय स्वरुप परमात्मा

समस्त जगत का कारण,

सब कुछ व्याप्त है इसमें |

स्थित है जड़ में,

चेतन में,

तभी सब व्याप्त है उसमें

तभी सब परिपूर्ण है |'

'वह समग्र भाव युक्त

सब इन्द्रियों के विषयों को

जानकर भी

मन-विषयों से विरक्त रहता |

वह आसक्ति रहित होकर

सब का भरण-पोषण करता |

बिना ही करण हित करता |'

'प्रकृति से सम्बन्ध है

तभी समस्त गुणों का

भोक्ता दिखता,

पर वह लिप्त नहीं होता |'

'वह आलौकिक

निर्गुण भाव लिए रहता |

समस्त जगत में,

समस्त प्राणियों में

बाहर-भीतर

वह ज्ञेय स्वरुप परमात्मा है व्याप्त |'

चर में वही,

अचर में वही |

समुद्र में जैसे जल,

जल में पड़ी बर्फ,

बाहर भी जल

भीतर बर्फ के जल |

अन्दर जल,

बाहर जल,

चारों ओर जल ही जल |

ज्ञेय का स्वरुप जानकर भी

जान नहीं पाते प्राणी,

अति समीप वही,

अति दूर वही स्थित लगता |

अति सूक्ष्म भाव युक्त

वह जानने में नहीं आता |

श्रद्धा से वह मन में स्थित होता |

श्रद्धा नहीं तो दूर-दूर तक नहीं दिखता |

एक नहीं

अनेकता दिखती,

आत्मा नए-नए रुप में दिखती |

सम्पूर्ण जगत एक सूत्र में बंधा,

हर प्राणी का भिन्न रुप रचा |

ब्रह्मा रुप से जग को रचता |

विष्णु रुप से पालन करता |

रुद्र रुप से करे संहार |

ब्रह्मां यही, विष्णु भी यही

शिव का रुप है यह संसार |

देखो! देखो! रुप अनेक,

ईश्वर के नित नये स्वरुप |

ब्रह्मं एक है फिर भी मेरा,

वही सर्वत्र, वही अनेकों का एक |

उसे सूर्य प्रकाशित न करता,

न चन्द्र रोशनी देता है |

तारों की भी ज्योति नहीं

विद्युत भी प्रकाश न दे

अग्नि की फिर बात है क्या!

वह तो सूर्य का तेज स्वयं है,

अग्नि-चन्द्र में स्वयं स्थित है |

जो सबको ही ज्योति देता,

वह स्वयं प्रकाश-पुन्ज

तम-अज्ञान

नहीं टिक सकते,

वे उन सबसे परे है |

इस ज्ञेय को जानो

और पहचानो,

यह चेतन

यह बोधमयी है |

ईश्वर मेरा

परम कर्तव्य,

यही जानने योग्य भाव है |

अभ्यास भाव से

जुटे रहो

ज्ञान के सब साधन अपनाओ,

तत्व ज्ञान से यह मिल सकता |

तत्व ज्ञान का योग पाओ,

तत्व ज्ञान से ईश्वर पा जाओ |

मन में ईश्वर

स्थित है सबके |

पलक झपकते

वह प्रत्यक्ष है दिखता |

ईश्वर यूं तो कण-कन में दिखता,

प्रेम से देखो

प्रत्यक्ष खड़ा है |

कभी बांसुरी बजाता,

कभी प्रेम रस देता

मन में सबके वही मुस्काता |

मन में सबके रस बरसाता |

प्रेम से मन में वही खड़ा है |

यही भाव हैं इस शरीर के,

यही ज्ञान है

यही विज्ञान |

ईश्वर का स्वरुप समझ ले,

मेरी भक्ति से शक्ति पा ले,

ईश्वर के तू तत्व को जान |

'देख! तू मुझको

स्वयं पा लेगा |

देख! तू मेरा स्वरुप बनेगा |'

'हे पार्थ!

इस महाब्रह्म को अनादि जान |

जीव का जीवन अनादि सिद्ध है |'

'राग-द्वेष

मोह-माया-दम्भ,

सत्-रज-तम

त्रिगुणात्मक भाव,

सभी प्रकत है

प्रकृति से |

अग्नि-आकाश-वायु-जल-पृथ्वी,

शब्द-रुप-स्पर्श-रस-गन्ध

ये सब तत्व प्रकृति जनित है |'

'दसों इन्द्रियां, बुद्धि-अहम्

और चंचल मन,

सभी भाव प्रकृति से उत्पन्न |

मानव यह तो निमित्त बना है,

सुख-दु:ख के भाव को दर्शाए |

प्रकृति में वह स्थित हुआ,

प्रकृति जनित भावों को भोगे |'

'सत्-रज-तम का

अनादि-सिद्ध सम्बन्ध,

जैसी जिसकी प्रबल भावना,

जैसा जिसका आसक्ति से

सम्बन्ध,

वैसे भाव हो,

वैसा ही जन्म |'

'जड़ सरीर में चेतनता लाए,

देह में स्थित जब आत्मा हो जाए |

इसे प्रभु का अंश ही मानो |

यही प्रकृति में जीवन लाए |

विलग नहीं हो सकती जानो

आत्मा उस परमात्मा से |

यही साक्षी, यही यथार्थ,

यही अनुमन्ता, यही है भर्ता |'

यही भोगता जीव रुप में,

यही ब्रह्मा की स्वामी ईश्वर,

यही महेश्वर, यही गुणातीत,

शुद्ध सच्चिदानन्दन ब्रह्म यही है |

यही मेरे मन में स्थित आत्मा है,

यही परब्रह्म परमात्मा है |

'यह आत्मा विलक्षण,

परमात्मा विलक्षण है |

शुद्ध बुद्धि और

सूक्ष्म ध्यान से,

स्थित हृदय दिखे

योगी को ध्यान से |

यह ज्ञान भाव से

मिलता ज्ञानी को

कर्म भाव से |

कर्म योगी को |

शुद्ध भाव से मिले सभी को |'

'सरल भाव से

सरल उपाय |

ईश्वर सरल है

सरल स्वरुप |

मन्द बुद्धि हो,

भाव न समझे जो |

तत्व ज्ञान का ज्ञान न हो |

शरण ज्ञानी के

जाकर जो,

ईश उपासना की चेष्टा करे,

ईश भाव मन में रखे,

प्रेम से 'उसका' श्रवण करे |

वह भी सरल भाव से

'उसे' प्राप्त हो |

भव-सागर से

तर जाए वो |

ईश्वर उसे भी मिल जाए |'

'हे अर्जुन!

यह चराचर प्राणी लेता

शरीर आत्मा के

संयोग से जन्म |

ज्ञानी पुरुष

विनाशशील माने इस शरीर को |

आत्मा का धर्म नित्य-अविनाशी माने |

वह ईश्वर को नाश रहित-चेतन

और

समभाव युक्त माने,

वह इस जीवन के यथार्थ को पहचाने |'

'प्राणी जो समभाव रखे,

अभिन्न माने आत्मा को परमात्मा से |

स्थूल शरीर से विलग माने स्वयं को,

अभिन्न भाव से मिल जाए परमात्मा से |

वह विनाश न पाए, वह परम गति ही पाए |'

'आत्मा में

कर्तापन का अभाव करे जो |

इन्द्रियों को इन्द्रियों के

विषय बरतते माने,

गुणों को गुणों में

बरतता माने,

गुणों द्वारा समस्त

कर्म होते माने,

प्रकृति ही कर्मो को

जन्म देती,

प्रकृति ही स्वयं कर्म

करती |

यह आत्मा अकर्ती है |

यह शुद्ध-मुक्त

नित्य-विकार रहित,

यही जीवन का

यथार्थ है

यही भाव को वह

यथार्थ मानता |

जिस क्षण अहम् भाव

समझ आ जाता,

जिस क्षण एकीभाव समझ आ जाता |

जैसे ही समभाव स्थापित होता,

मन में आत्मभाव जाग्रत हो उठता |'

'परमात्मा एक,

पृथक-पृथक स्थित प्राणियों में

आत्मा भी पृथक नहीं,

वही एक है,

उसी एकता से ही अनेकता होती है,

वही एक ब्रह्म है |

वह क्षन बहुत विलक्षण होता |

प्राणी ब्रह्म को पा लेता,

वह ब्रह्म भाव ही हो जाता |'

'हे अर्जुन!

शरीर में स्थित यह परमात्मा

अनादि है,

यह सदा ही व्याप्त है,

प्रकृति और गुणों से जो परे है |

यह निर्गुन रुप

वास्तव में विरक्त है |

कहीं लिप्त नहीं, निर्लिप्त है |'

'जैसे आकाश व्याप्त है

सर्वत्र वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी में,

समभाव युक्त होकर भी

गुण-दोषों में

लिप्त नहीं होता |

वैसे ही यह आत्मा है |

सर्वत्र स्थित है,

अति सूक्ष्म भाव में,

पर मन-बुद्धि-इन्द्रिय-शरीर के

गुण-दोषों से लिप्त नहीं |'

'हे अर्जुन!

एक ही सूर्य

इस ब्रह्माण्ड को प्रकाशित किए है,

उसी तरह यह एक विलक्षण आत्मा

इस समस्त जड़ वर्ग को प्रकाशित

किए है |

यही सबको सत्ता-स्फूर्ति देती है |

भिन्न-भिन्न भाव में प्रकत होती है |'

'हे अर्जुन!

इस शरीर को

इस आत्मा को

इनके भेद को

इनके विलक्षण भाव को,

जो पुरुष

ज्ञान-नेत्र से

तत्व भाव से

जान लेता |

जो इस आत्मा को

चेतन, निर्विकार,

अकर्ता-नित्य

अविनाशी-ज्ञान स्वरुप

मान लेता,

वह महात्मा बन जाता,

वह परम ब्रह्म

परमात्मा को प्राप्त होता |'

14) [**गुणत्रय विभाग योग**](http://audiohindi.com/NEWkavitameingita/guntreyvibhagyog.html)

सृष्टि त्रिगुण मयी,

सत्-रज-तम गुण भावमयी |

बन्धन यह आनन्द दे,

गुण में जीव बँधा रहे |

श्री कृष्ण के भाव को समझे जो,

पहले रज-तम भाव का त्याग करे,

सत् को ग्रहण करे जीवन में |

नियमित बन अभ्यास करे

फिर सत्व भाव को भी तज दे |

ऐसे में ईश्वर अवश्य मिलेगा

ऐसे में ज्ञान युक्त योगी

परम सिद्धि को पाएगा |

अर्जुन से बोले

श्री कृष्ण,

' सृष्टि का भाव

है ज्ञान का भण्डार,

जो कुछ भी मैं कह चुका,

उसी ज्ञान को फिर कहता हूँ|

सब ज्ञानों में यह उत्तम,

यह परम ज्ञान तू जान |

इस तत्व ज्ञान का भाव जान |

प्रकृति का स्वरूप समझ,

बन्धन से छूट पाने की राह को जान |'

'देख! इस तत्व ज्ञान को पाकर ही,

मुनिजन परब्रह्म को प्राप्त हुए |

इस परम ज्ञान को पाकर ही,

ज्ञानीजन परम शाँति को प्राप्त हुए |'

'इस ज्ञान को जो आश्रम माने,

मेरे स्वरूप को वह पहचाने |

वह मेरे भाव में स्थित हो जाए |

न महासर्ग के आरम्भ में

वह उत्पत्ति पाए,

न प्रलय काल में भय से पीडित स्वयं को पाए |

वह मेरे स्वरूप में अभेद-भाव से स्थित हो जाए |'

'हे अर्जुन!

जगत की कारणरूप,

मेरी ब्रह्मा रूप मूल प्रकृति

प्राणी मात्र में

जड़ चेतन के संयोग से गर्भ धारण करे,

जड़ को जीवन प्रदान करे

प्राणी जगत में उत्पत्ति की

प्रक्रिया स्थापित करे |'

'हे अर्जुन !

भिन्न-भिन्न वर्ण-आकृति

पशु-पक्षी-देव-गण-राक्षस

स्थूल भाव प्रकृति से पाएँ |'

'माता प्रकृति स्वरूप बनी,

जीव धारण करे,

मैं पिता भाव में आकर

चेतनता ले आऊँ |

मैं जीव को जीवन प्रदान करूँ |'

माँ प्रकृति भाव है,

पिता ब्रह्मा का रूप है |

देखो! लीला विचित्र देखो,

हर जीव जन्म लेता है

माँ के गर्भ से

और पिता जीवन देता है |

वही प्राणी फिर उत्पत्ति का

कारण बनता

वही ब्रह्मा का भाव बन जाता |

'चक्र सृष्टि का जब तक चलता

हर प्राणी

प्राणी से ऊपर

ईश्वरीय भाव को पाता |

वह प्रकृति की प्रक्रिया में

गर्भ धारण करने वाली

बनता माता,

वह प्रकृति में चेतनता लाता,

वह ब्रह्मा का

माध्यम बनता,

वह तभी पिता कहलाता |'

'हे अर्जुन!

जीव की आत्मा

अविनाशी |

सत्-रज-तम

ये तीन गुण प्रकृति के,

इन्हीं से बनता यह शरीर |'

'अज्ञान ही बन्धन में बाँधे ,

अहँ-आसक्ति और ममत्व भाव में

सतगुण सात्विक्ता लाए |

रजोगुण लोभ प्रदान करे

और

तमोगुण प्रमाद-मोह-अज्ञान भाव में

से जीव को जीवन प्रदान करे

'हे निष्पाप !

सतगुण का स्वरूप निर्मल है,

यह दोष मुक्त,

प्रकाशमयी

और

ज्ञानमयी होकर शाँति प्रदान करे |

मन की चंचलता को रोके,

मन विरक्त हो छल-प्रपन्च से |

ईश्वरीय भाव मन में आए |

पापों का अभाव हो मन से

और ज्ञान भाव से मोहित ज्ञानी,

मोहपाश में ज्ञान के बँधा रहे |

सुख से सम्बन्ध स्थापित हो

जीवन मुक्त वह न हो पाए |'

'हे अर्जुन!

रजो गुण उत्पन्न हो

आसक्ति-कामना से |

उसी भाव से वह वृद्धि पाए |

जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न हो

और वृक्ष ही बीज की उत्पत्ति

का कारण बने |

वैसे ही फल की भावना

स्थापित हो मन में

कर्म मोह से बाँधे रहे |

बार-बार कामना हो,

आसक्ति भाव मन में रहे |

कर्म फल भाव मन में रहे,

प्राणी मोहजाल में फँसा रहे |'

'हे अर्जुन!

देह का अभिमान हो प्राणी में,

अंत:करण में ममता हो,

मोह भाव से अज्ञान भाव

प्रकट हो,

प्रमाद में मन डूबा रहे,

आलस्य-निद्रा से मन बँधा रहे |

जीव का शरीर से ही बस प्रेम रहे,

शास्त्र विहित कर्मो से सम्बन्ध न हो,

बस जीवन है,

जीवन में प्रमाद भाव ही प्रधान रहे |

ऐसा जीव तमोगुण भाव में लिप्त रहे |'

'हे अर्जुन!

सतगुण से सुख प्राप्ति हो |

भोगों में लिप्त न हो प्राणी,

आत्म चिन्तन से सुख-शाँति मिले |'

'रजोगुण शास्त्रविहित साकाम कर्म भाव

से बाँध ले,

भोगों की इच्छा उत्पन्न करके

कर्मो की ओर प्रवृत्त करे |'

'तमोगुण

कर्तव्य-अकर्तव्य भाव को नष्ट करे |

विवेक ज्ञान को शून्य कर दे |

प्रमाद में प्राणी रत हो जाए |

चेतनता मन से दूर हो

बस आलस्य-निद्रा में घिरा रहे |'

'हे अर्जुन!

रजोगुण और

तमोगुण भाव को रोक कर ही

सतगुण भाव बढ़ता है |

अन्त:करण में जीव के

प्रकाश-विवेक-वैराग्य बढ़ता है |'

'सतगुण और तमोगुण

भाव को दबाकर ही

रजोगुण भाव बढ़ता है |

शरीर-इन्द्रिय अन्त:करण में

चंचलता-लोभ के वश में होकर

जीव कर्मो का कर्ता बनता है |'

वैसे ही

सतगुण व रजोगुण को

दबाकर

तमोगुण भाव ही बढ़ता है |

मोह में लिप्त होकर प्राणी

प्रमाद में प्रवृत्त हो जाता है |

वृत्तियाँ विवेक शून्य हो जाती हैं |

ज्ञान का अभाव होकर,

कर्मो और फल भोगने की

प्रवत्ति का भाव नहीं रहता |

मन प्रमाद-आलस्य युक्त हो जाता |

तभी तमोगुण भाव बढ़ जाता |'

'सतगुण भाव में

मन उत्सुक होता,

मुक्ति भाव मन में आता |

अन्त:करण में चिन्तन होता,

इन्द्रियों में चेतनता आती,

विवेक शक्ति भी जाग्रत हो उठती |'

'तमोभाव त्यागता मन,

मन रजोगुण रूप आसक्ति त्यागता,

स्वयं ही एक लौ जाग्रत हो उठती |

मन सत्य-असत्य का निर्णय करता,

मन कर्तव्य भाव को स्थापित करता,

मन मान-मर्यादा की सीमा तय करता |'

'हे अर्जुन!

रजोगुण बढ़ता,

लालसा बढती |

धन-लालसा में मनुष्य रत हो जाता,

कर्तव्य भाव का विवेचन भूल,

मन इच्छा पूर्ति में मग्न हो जाता |

हर नई सुबह

नया लोभ होता |

धन-संग्रह की इच्छा होती |

मन चंचल हो उठता |

नये-नये भाव सोचता,

नई-नई राह ढूंढता,

मन की प्रकृति में बस स्वार्थ होता |

साकाम कर्म ही मन में रहते,

विषयों के आधीन मन

अशाँत रहता |

ऐसा मन रजोगुण भाव

से मोहित होता |

मन दिन-रात उधेड़ बुन में रहता,

आसक्ति-पूर्ति में जुटा रहता |'

'हे अर्जुन!

तमोगुण के बढ़ जाने से

कर्म भाव लुप्त हो जाता |

विवेक शक्ति शून्य हो जाती |

मोहिनी- वृत्ति के मोहजाल

में मन स्वप्न-दृष्टा हो जाता |

न कर्तव्य भाव रहता,

न स्मृति भाव होता,

मन स्वप्न-दृष्टा हो जाता |

कर्तव्य-कर्म की अवहेलना होती,

निद्रा-प्रमाद-आलस्य भाव ही जाग्रत रहता |'

दिव्य प्रकाशमय

शुद्ध-सात्विक भाव,

कर्तव्य कर्म में लिप्त हुए

स्थूल-शरीर से

मन इन्द्रिय-प्राणों से विलग होकर,

सतगुण भाव में प्राणी

निर्मल-दिव्य स्वर्ग लोक को पाता |'

'आसक्ति भाव में

साकाम कर्मो में रत प्राणी,

स्थूल शरीर से विलग होकर,

लौट कर फिर

साकाम-कर्म श्रेणी में

मनुष्य लोक में आता है,

बार-बार वह जन्मता है,

बार-बार कर्मो की पूर्ति में

इच्छा आकाँक्षा की पूर्ति में

वह रजोगुण भाव में रत रहता |

आसक्ति उसे आकर्षित करती,

वह प्रेममयी इस जीवन में

बार-बार वृद्धि ही पाता |'

'और तमोगुण भाव से

लिप्त हुआ प्राणी,

लौट मनुष्य भाव नहीं पाता,

अज्ञान भाव से भटकता रहता,

मानव जन्म नहीं पाता,

कीट-पतंग-पशु-पक्षी बनकर

तामस भाव ही मन में रखता |'

'मूढ़ भाव का जीवन जीकर,

कर्तव्य भाव को तजकर

तुम इस जीवन को व्यर्थ न करो,

यह बार-बार नहीं पाओगे |

तामसी भाव मन में होगा,

फिर लौट कर भी नहीं आओगे |

'यह जन्म मिला है |

परम शाँतिमय-परब्रह्मा परमात्मा

को पाने का मार्ग बना है |

निष्काम कर्म करोगे,

लोकहित कर्म करोगे,

परम शाँति को पाओगे |

सतगुण भाव रखोगे,

स्वर्ग-सुख पाओगे |

रजोगुण भाव होगा,

एक बार फिर प्रयत्न करने

को मिलेगा,

साकाम कर्म को निष्काम

भाव में परिणित

करने का,

उससे भी उपर ऊठकर

स्वर्ग लोक को पाने का

और स्वर्ग लोक से भी

ऊपर

परब्रहमा परमेश्वर में

ही लीन होने का |'

पर तामसी भाव तो

वापिस लौटा ले जाएगा,

वही मूढ़ योनि में

तुम्हें ले जाएगा |

ब्रहम् भाव या स्वर्ग क्या

मनुष्य भाव भी फिर न

मिल पाएगा |'

'शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म

निष्काम भाव से कर प्राणी,

सुख-ज्ञान और वैराग्य भाव को पाता |

भोगों की प्राप्ति हेतु किए कर्मों में

अहम्-आसक्ति-परिश्रम होता,

मन आठों पहर जुटा रहता,

सुख शरीर को मिलता लगता,

पर शाँति कभी न मिल पाती |

अन्त में सदा

भाव एक ही रहता

'मेरा सुख अभी कहाँ मिला,

अभी दु:ख साथ खडा |'

'सुख की सीमा अनन्त-असीम,

एक मिला, दूसरे की चिन्ता,

दूसरे से तीसरे की चिन्ता,

जहाँ रूका, दु:ख आन खड़ा |

ऐसा कर्म राजस भाव का |

यही दु"ख का कारण सबका |'

'तामस भाव अज्ञान युक्त |

मूढ़ भाव में जीवन यापन |

केवल जीवन-मोह

आलस्य-निद्रा में

मरण सम जीवन |'

'ज्ञान-प्राकश

सुख-शाँति

सतगुण भाव प्रदान करे |

लोभ मिले रजोगुण से,

जो आसक्ति-कामना-स्वार्थ भाव

का जन्म करे |

तमोगुण भाव

अज्ञान युक्त,

मोह-प्रमाद-आलस्य

जीवन के अंग बने |'

'पुण्य कर्म

सतगुण से हो

और जीव स्वर्ग लोक को जाए |

अपने कर्मो का भोग वह

सुख में भोग पाए |'

'मध्य मार्गी राजसी हो |

मोह-प्रेम भाव से आसक्ति रहे |

वह बार-बार जन्म ले,

बार-बार मनुष्य भाव में लौटकर

अपनी आसक्ति,

इच्छाशक्ति को प्राप्त करे |'

'तामस भाव

तो न जान पाए

इस जीवन की दुर्लभता को |

अवसर मिला इस जीवन में,

वह भी पुन: लौट न मिल पाए |

एक जन्म इस मनुष्य भाव में,

अज्ञान युक्त ही बीत जाए,

लौट कर तामस प्राणी

फिर कीट-पतंग-पशु-पक्षी

बनकर ही इस सृष्टि में

जीवन-पर्यन्त जड़ सा बना

रह जाए |'

'स्वाभाविक दृष्टि से

मनुष्य

स्वयं को इस शरीर से

अभिन्न माने,

स्वयं को ही कर्ता माने |

ज्ञान भाव से युक्त होकर,

विवेकशीलता अपनाकर

वह स्वयं को

कर्ता न कर्मो का समझ

केवल दृष्टा जब माने |

सब प्रकृति जनित गुणों

को ही

गुणों का कर्ता जाने,

वह केवल दर्शक बन जाए |'

स्वयं को विलग मान

इस इन्द्रिय-मन

इच्छा-लालसा से

केवल परमतत्व को जान पाए |'

'अपने को निर्गुण-निराकार ब्रह्मा

से अभिन्न माने |

सर्वत्र-सदा-सर्वदा

एक ही सत्ता का भाव रहे,

हे अर्जुन! वह मेरा ही रुप बन जाए,

वह स्वयं मुझे प्राप्त हो जाए |

वह इस शरीर के गुणों

से परे हो जाए,

शुद्ध आत्मा,

ज्ञान-चिन्तन से

वह इस शरीर की उत्पत्ति

का मूल कारण,

इस जड़-चेतन के संयोग का

उल्लंघन कर जाए,

वह जन्म-मृत्यु-वृद्धावस्था

के दौर पुन: न पाए,

वह दु:ख मुक्त हो जाए |

वह परमानन्द को पा जाए |'

यह सुनकर

अर्जुन तब बोला,

'कैसा स्वभाव?

कैसे हों लक्षण?

हे प्रभो! सत्-रज-तम

का अभाव कैसे कर लेता योगीजन?'

तम से निकल कर

रज भाव मिलता,

रज से निकल सतगुण पाते,

या फिर

सत से रज

और

रज से तमोगुण में वृद्धि पाते ?

कैसा साधन जो गुण से गुण

में ही रह जाए ?

कर्म भाव हो कैसा विलक्षण,

त्रिगुण भाव से दूर हो मन?'

श्री भगवान तब बोले

'हे अर्जुन्!

शरीर-इन्द्रिय और अन्त:करण में

आलस्य-जड़ता का अभाव हो जाता |

मन निर्मल-चेतन भाव युक्त हो जाता |

ज्ञान-शाँत-आनन्दमयी हो जाता |

उसका मन समभाव युक्त हो जाता |

प्रवृत्त होने की बात कहाँ रहती!

मन का निरुपण ही ज्ञानमयी होता,

वह निर्मल होता, वह चेतन होता |'

'निष्काम भाव युक्त होकर

कर्तव्य कर्म, ज्ञानमयी होता,

इच्छा-आसक्ति से परे होता |

वह स्वयं प्रकाश-सदृश हो जाता |

'रजोगुण के कार्य रुप

काम-लोभ-स्पृहा-आसक्ति का

अभाव हो जाता |

कर्मो की प्रवृति होती,

कर्मो में समभाव स्थिति होती |

मोहिनी-वृत्ति मन की न रहती,

अज्ञान-प्रमाद का अभाव हो जाता |'

'सत्-रज-तम भाव से मुक्त हो प्राणी,

विचलित नहीं होता,

गुणों को गुणों में बरतता देखता,

केवल वह एक माध्यम होता |

सुख-दु:ख-कर्म-फल से

मन में विक्षेभ न होता,

वह निर्विकार हो जाता |

वह एकरस भाव में रम जाता |

निरन्तर एक भाव

मन में होता |'

'आत्मा

नित्य-चेतन है,

एकरस-सच्चिदानन्द स्वरुप है,

ऐसा मान

वह निर्गुण-निराकार

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा में

अभिन्न भाव से स्थित

हो जाता |

ऐसे में तन-मन से

हो रहे कर्मो का

वह कर्ता न हो कर

दर्शक बन कर रह जाता |'

वह आत्म भाव में,

अपने वास्तविक स्वरुप में,

शाँत-चित्त,

श्वास-क्रिया पर नियन्त्रण रखे,

द्वेष-अहम्-लोभ-मोह-आसक्ति से परे,

सम रहता,

वह स्वस्थ चित्त होता |

सुख-दु:ख,

हर्ष-शोक में विचलित न होता |'

'मिट्टी-पत्थर-सुवर्ण

समान भाव दिखते |

प्रिय-अप्रिय,

निन्दा-स्तुति भाव सम लगते |

न निन्दा सुन क्रोध वह करता,

न स्तुति सुन वह प्रसन्न चित्त होता |

वह समभाव युक्त,

सरल चित्त-शाँतिप्रिय रहता |'

'इस स्थूल शरीर का अभिमान नहीं होता,

वह मान से राग नहीं रखता,

वह अपमान से द्वेष नहीं रखता |

मान देने वाले से प्रेम

और

अपमान करने वाले से

बैर नहीं रखता |

वह भावनाओं में नहीं बहता |

शरीर-मन-इन्द्रिय-बुद्धि से

लोक संग्रह में की क्रियाओं

के कर्तापन का अभिमान नहीं रखता |'

'हे अर्जुन!

जब तक अन्त:कारण में

राग-द्वेष,

विषमता

हर्ष-शोक,

अविद्या

और

अभिमान

हो लेशमात्र भी विद्दमान,

तब तक प्राणी गुणातीत अवस्था

में न स्थित कर पाए अपने प्राण |

धारण करे जो इन भावों को,

नित्य प्रति अभ्यास करे

अवश्य सफल होगा वह

कर्तापन का अहम् स्वयं दूर हो जाएगा |'

'और दूसरा सरल उपाय

भक्तियोग भी तू जान |

मात्र एक परमेश्वर को

तू अपना आश्रय दाता मान |

उसे स्वामी,

परम आश्रय दाता,

परम हितैषी

सर्वस्व मान |

स्वर्थ रहित

श्रद्धा पूर्वक

अनन्य प्रेमभाव में

अटल कर उसमें ध्यान |

समस्त भावों को

ईश्वरीय भाव मान,

स्वयं को निमित्त मात्र मान,

समस्त क्रियाओं को अपनी

भक्ति भाव में अर्पण कर दे |

ब्रह्म भाव तू स्वयं पा लेगा |

त्रिगुणमयी भावों को लाँघ सकेगा

ईश्वरीय भक्ति में होकर लीन,

तभी ब्रह्म का अंश बनेगा |

तभी ब्रह्म भाव को पाएगा |'

'यह निर्गुण-निराकार

ब्रह्म,

मुझ सगुण रुप

परमेश्वर से भिन्न नहीं|

इसी भाव में

मै हूँ ,

ब्रह्मा है |

यही सबका आश्रयदाता |

यही अमृतमयी

नित्य धर्म,

अखण्ड,

एकरस,

आनन्द आश्रय प्रदाता |

यही पाने की

चेष्टा कर,

बार-बार चेष्टा

कर |'''

14)**[पुरुषोत्तम योग](http://audiohindi.com/NEWkavitameingita/purshottamyog.html)**

‘सृष्टि का मूल जानो |

सृष्टि का स्वरूप पहचानों |'

श्री भगवान बोले,

'जीव

और

आत्मा

का नियन्ता पुरूषोतम |

यह सर्वव्यापी-अन्तर्यामी,

गुण-प्रभाव-रूप जो समझे

वही ज्ञानी |

यह संसार पीपल के वृक्ष समान |

उत्पत्ति-विकास में पुरूषोत्तम का योगदान |

अलौकिक-अविनाशी स्वरूप में

ईश्वर मूल कारण

उसी का में सृष्टि योगदान |'

'आदि पुरूष पुरूषोत्तम से

ब्रह्मा का हुआ निर्माण |

वेद शास्त्र हर शाख के पत्ते,

वेद मन्त्रों ने फूँके प्राण |

यह सब माया

परमेश्वर की |

उसी ने रचा

यह विधान |'

'वेद मन्त्र ही

जीवन देते,

जीव को यही नियन्त्रित करते |

वेद रूप से चले

समस्त दृश्य जगत का विधान |

उत्पत्ति-वृद्धि और क्षय

सृष्टि का,

कारण और निवारण

सृष्टि का,

वेद मन्त्र में रचा विधान |

इसे तू ईश्वर के

नियम ही मान |

मूल रूप से प्रकृति

के सिद्धान्त को

जान |'

'यह संसार वृक्ष

त्रिगुण भाव मयी,

सत्-रज-तम भाव युक्त

और

शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध

रूप युक्त विषय भोग रूपी कोपलों

से सर्वत्र फैला है |

देव-गण-मनुष्य-रूप में

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में

ऊपर से नीचे तक,

सर्वत्र व्याप्त हैं शाखाएँ |'

'मनुष्य कर्मो से बँधा ,

मोह-ममता-आसक्ति - कामनाओं

रूप इस वृक्ष की जडों में बँधा |

बार-बार जीवन पाता,

वासनाओं के घेरे में घिरा रहता |

विभिन्न लोकों में, समस्त भोगों में

है लिप्त रहता |'

'यह संसार- वृक्ष

प्रतिक्षण परिवर्तनशील |

आदि-अन्त और स्थिति

समझ सकते |

पर तत्व ज्ञान मिले तो जाने

कल्प के आरम्भ से

कल्प के अन्त तक

यह कितने रूप बदल चुका |'

'अविद्दा-ममता और वासना

मूल रूप से विद्दमान |

प्रतिक्षण दृढ़ हो जाएँ,

प्रतिक्षण वृद्धि को पाएँ |

इस वृक्ष में फैली

इन ममतामयी जड़ो को,

इन वासनामयी जड़ो को,

ज्ञानमयी होकर

जब तक तुम न काटोगे,

तब तक इस संसार वृक्ष

के मूल को न पाओगे |

वेदमयी होकर खोजो,

वेद मन्त्र से भाव को जानो,

मोह-ममता-आसक्ति - कामना

से वैराग्य स्थापित करो |

वैराग्य पाकर ही तुम

उस परम पद रूप परमेश्वर

को खोज पाओगे |'

'मनन करो,

चिन्तन करो,

ईश्वर के गुण-प्रभाव का,

सृष्टि के मूल रूप का विज्ञान समझो |

जान गए तो

लौट कर फिर इस संसार में न आ पाओगे |

उसी परम-पुरूष परमेश्वर की,

उसी आदि नारायण की शरण पाओगे |

यह दृढ़ - निश्चय कर मनन करो,

अभिमान-रहित होकर उसी का चिन्तन करो |'

'जिसका मान-मोह नष्ट हो गया,

जो जाति-गुण- ऐश्वर्य - विद्दा के अहम् से परे हो,

जो अविवेक-प्रतिष्ठा का लोलुप न हो,

जो आसक्ति भाव से भोगों में रत न हो,

जो नित्य-स्थित हो जाए परमात्मा में,

कामनाओं के विकार से जो ग्रस्त न हो |

सुख-दु:ख के द्वन्द्व से मुक्त हुआ

मूढ़ - भाव-अज्ञान भाव से मुक्त हुआ

ज्ञानी जन

अवश्य ही सर्वशक्तिमान-अविनाशी

परमप्रिय परमात्मा की माया के विस्तार

से बने संसार रूपी वृक्ष से

विरक्त होकर,

उसी परमप्रिय को प्राप्त हो जाएगा |'

'परमपद प्राप्त कर

ऐसा ज्ञानी जन,

लौट कर पुन: जीव शरीर नहीं पाएगा |

वह इस संसार से मुक्त हो जाएगा |

उस प्रकाशमयी

परम पद प्राप्त ज्ञानी को

मेरा नित्यधाम प्राप्त होगा |

वह दिव्य-चेतन-सच्चिदानन्दमय

मेर स्वरूप बन मुझमें ही लीन हो जाएगा |'

'ऐसे परम प्रकाशमयी

को न सूर्य प्रकाशित कर सकता,

न चन्द्र रोशनी दे सकता,

न अग्नि प्रज्ज्वलित कर सकती |

मेरा परमधाम प्रकाशमयी,

सबका वह प्रकाश-स्त्रोत |

ज्ञानमयी होकर ज्ञानी वह

स्वयं प्रकाश

पुन्ज बन जाता |

प्रकाशमयी को

किसी और के

प्रकाश की

ज्योति

भला कैसे प्रकाशित

कर सकती ?'

'इस स्थूल शरीर में

जीवात्मा मेरा अंश बनी |

यही जीवन दायिनी

यही चेतनता प्रदायिनी |

मैं चेतन,

समस्त जीव चेतनता पाते |

जड़-चेतन के संयोग से

प्राणी चेतनता ही पाता |

यही आत्मा सदा सनातन,

यही अनादि-नित्य कहलाती |'

'जीवात्मा से बँधी हैं

सभी इन्द्रिँया और मन |

प्रकृति के एक रूप से

प्रकृति के दूसरे रूप में

आत्मा साथ ले जाती

पाँचो इन्द्रियों और मन को |'

'मन-इन्द्रिय सभी चेतनता के

साथी बने

आत्मा नहीं तो

मन कैसा?

मन नहीं।

इन्द्रियों का रूप कैसा ?

मन का बन्धन

इन्द्रियों का आकर्षण

आत्मा के स्वरूप बिना,

कहीं नहीं आकर्षण

आत्मा के स्वरूप बिना,

कहीं नहीं आकर्षण |

वायु जैसे गन्ध ग्रहण

कर लेती,

जहाँ वायु जाती,

वही गन्ध ले जाती |

वैसे ही इस स्थूल देह

की स्वामी आत्मा,

देह त्याग,

वायु बनकर

मन सहित सभी इन्द्रियों

को ग्रहण कर लेती,

अपनी चेतनता में रख लेती

और नए परिवेश में,

एक नए रूप में

किसी नए स्थूल भाव में,

संयोग स्थापित करती,

स्वयं प्रवेश करती,

साथ में उसी मन,

उसी इन्द्रियों की गन्ध

भी ले आती |

वह नया रूप पा लेती |

मन तो फिर भी वैसा ही

वैसी इन्द्रियों की गन्ध रहती |'

'यह जीवात्मा

मन,

श्रोत्र-त्वचा-चक्षु-प्राण-रसना

का आश्रय पाता |

मन बुद्धि और इन्द्रियों का

भोक्ता बन जाता |'

'वास्तव में जानो

तो आत्मा न तो कर्मो का कर्ता है

न ही विषय सुख-दु:ख का भोक्ता है |

यह अज्ञान जनित अनादि सम्बन्ध है

जो कारण है,

इस के कर्तापन का,

इस के भोक्तापन का |

इस तत्व भाव को केवल

ज्ञान रूप नेत्रों वाले ज्ञानी जन

ही जान पाते |'

शरीर को त्यागते हुए,

शरीर में स्थित रहते

और

विषयों को भोगते हुए

अज्ञानी जन क्या जाने

कि

यह आत्मा तो

प्रकृति से सर्वथा अतीत,

शुद्ध बोध स्वरूप और

असंग भावमयी है |'

'नित्य-शुद्ध-विज्ञान आनन्दमयी

आत्मा को यथार्थ रूप से जानते

योगीजन |

शुद्ध अन्त:करण नहीं जिनका,

मन मलिन भाव से युक्त,

शुद्ध भावमयी न हो जब तक मन

जान न पायें यत्न करके भी

आत्मा के तत्व भाव को |'

'समस्त जगत को प्रकाशित करता

तेज सूर्य का |

तेज चन्द्र में स्थित जो,

अग्नि के प्रकाश को

मेरा तेज ही मान |

मन-वाणी-नेत्र में प्रकाशित तू मेरा तेज ही जान |'

'विश्वव्यापिनी पृथ्वी की

धारण शक्ति

मेरे आत्म रूप का अंश बनी,

अमृतमयी स्वरूप चन्द्र का

मेरा रसमय रूप बना |

ज्योत्सना मेरी से

समस्त पत्र-पुष्प-फल

गुण पाएँ ,

औषधि रूप में

समस्त जगत की पुष्टि करें |'

'मैं प्राणी जगत में

स्थित प्राण और

अपान से युक्त

अग्नि भाव से

अन्न पचाता |'

'मैं सबके ह्रदय में स्थित हूँ |

शुद्ध अन्त:करण से प्रत्यक्ष दर्शन देता हूं

यथार्थ भाव को समझने का ज्ञान मुझसे है |

संशय भाव का निराकरण मुझसे

और मन में स्मृति भाव का विकास मुझी से है |'

'वेद-ज्ञान में रचे सभी विधान मैंने |

मेरे भाव को समझे जो

वेद-ज्ञान वही समझ सकता |

वेदों में समन्वय स्थापित कर

मैं शाँति प्रदान करता |

मैं वेद भावों का कर्ता

और ज्ञाता |

मेरा स्वरूप, मेरा ज्ञान

यथार्थ भाव से वेदों का तात्पर्य समझा सकता |'

'इस संसार में

दो रूपों में विराज मन पुरूष तू जान!

एक वे जो नाशवान हैं |

और दूसरे अविनाशी तू मान |

सम्पूर्ण जगत में स्थित प्राणियों के शरीर

ये नाशवान, और

जीवों में स्थित आत्मा को तू अविनाशी मान |'

उत्तम पुरूष वही

जो इस

क्षर-अक्षर को धारण करके,

समस्त प्राणियों का पालन करता |

वह लोकहित हेतु कर्म करता |

ईश्वर भाव वही समझ सकता |'

'क्षर-अक्षर से उत्तम स्वरूप जिसका

तीनों लोकों में निवास जिसका,

जो कभी नष्ट नहीं होता,

सदा निर्विकार

एकरस रहता |

क्षर -अक्षर का

वह नियामक,

वही सबका स्वामी,

सर्वशक्तिमान ईश्वर,

गुणातीत-शुद्ध,

वही ईश्वर,

वही पुरूषोंत्तम कहलाता |'

हे अर्जुन!

मैं इस नाशवान जड़ वर्ग से

सर्वथा सम्बन्ध रहित,

सर्वथा निर्लिप्त |

जीव में स्थित अविनाशी आत्मा

से भी विलक्षण |

मेरा अंश यह अविनाशी-चेतन

स्थित प्रकृति में ,

और मैं इसके गुणों से भी

सर्वथा अतीत हूँ |'

'यह जीवात्मा अल्पज्ञ है,

एक भाव से दूसरे भाव में जाती है |

मैं तो सर्वज्ञ हूँ |

वह नियम्य है,

मैं नियामक हूँ |

वह मेरी अंश, मेरी उपासक है,

मैं उसका स्वामी उपास्यदेव हूँ|

वह अल्पशक्ति सम्पन्न है,

मैं सर्व शक्तिमान हूँ |

तभी मैं इस लोक में,

वेदों में पुरूषोत्तम नाम हूँ |'

'हे भारत!

जो ज्ञानी पुरूष

ईश्वर को क्षर से अतीत

और

अक्षर से उत्तम जान लेता

वह मेरे इस तत्व ज्ञान को जानता है,

वह मेरा पुरूषोत्तम भाव जानता है |

वह सर्वज्ञ पुरूष

मन-बुद्धि से

अपने कर्तव्य कर्मों से सबको

सुख पहुँचाता,

वही मेरा भक्त बन पाता |

वही मुझे स्मरण रखता |'

'हे निष्पाप अर्जुन!

यह अति गोपनीय भाव तू जान |

इसका तत्व तू पहचान |

पुरूषोत्तम भाव को जान कर

मनुष्य ज्ञानवान हो जाता है |

जीवन जीव का कृत्कृत्य

हो जाता है |

''

15) [**देवासुर सम्पद विभाग योग**](http://audiohindi.com/NEWkavitameingita/devasursampadvibhagyog.html)

'ईष्ट के वियोग

और

अनिष्ट के संयोग की आशंका,

मन में उत्पन्न करती कायरता |

भय होता प्रतिष्ठा का,

भय होता अपमान का,

रोग- मृत्यु का भय

मन में घर कर जाता |

इसका अभाव हो जिसके मन में

वह अभय कहलाता,

वही मन सात्विकता पाता |'

'अन्त:करण शुद्ध हो जिसका,

मन में हो निर्मल विचार,

राग-द्वेष-हर्ष-शोक

ममता-अहम् का सर्वथा

अभाव हो जाता,

वह परमात्मा का यथार्थ रूप

पहचानता,

उसे पाने को निरन्तर यत्न करता,

वह ज्ञान योगी होता,

वह सात्विक भाव लिए होता |'

'कर्तव्य भाव हो मन में जिसके,

निष्काम भाव से

अन्न-वस्त्र-विद्दा-

अर्जित करता,

प्रेम से भूखे को

अन्न देता, वस्त्र देता,

विद्दा का ज्ञान देता

वह दानशील कहलाता |

वह सात्विकता की श्रेणी पाता |'

'मन इन्द्रियों को विषयों से

दूर करता,

ईश्वर-पिता-माता

अतिथि-महात्मा-गुरुजन

की पूजा जो करता,

यज्ञ पालन जो करता,

वेद-विधान का अध्ययन करता,

ईश्वर का चिन्तन जो करता,

स्वधर्म पालन के लिए जुटा रहता,

शरीर-इन्द्रिय-और अन्त:करण में जिसके

सरलता होती,

वह शुद्ध भाव मयी होता,

वह सात्विक पुरूष होता |'

'बुरे की चाह न होती मन में,

वाणी में शुद्ध वचन होते,

शरीर से कष्ट न देता,

अपकार के बदले उपकार ही देता

क्रोध-अहम् से दूर होता,

चित्त जिसका अशाँत न होता,

निन्दा भाव से दूर जो होता,

प्रायोजन बिना दया भाव होता,

आसक्ति -प्रमाद का अभाव होता,

शास्त्र-नीति युक्त रहता,

कोमलता पूर्ण व्यवहार होता,

व्यर्थ चेष्टा का अभाव होता,

वह सात्विक भाव युक्त होता |'

'श्रेष्ठ पुरूष का तेजस्वी भाव,

क्षमा-धैर्य-शुद्ध अन्त:करण,

शत्रु भाव से विरक्त,>>>

पवित्र-व्यवहार

और सबसे ऊपर

स्वयं को पूज्य मानकर,

मान-प्रतिष्ठा की इच्छा,

अभिमान का भाव

मन में न हो जिसके,

वह दैवी-सम्पदा युक्त

पुरूष होता |'

'हे अर्जुन!

यही उत्तम पुरूष के लक्षण,

यही उत्तम पुरूष का जीवन |'

'हे पार्थ !

मान-बड़ाई-पूजा-प्रतिष्ठा का ढोंग जो करता,

ज्ञानी-महात्मा कह स्वयं को प्रसिद्ध जो करता,

अहम् भाव से युक्त वह दम्भी कहलाता |'

'विद्दा-धन-कुटुम्ब,

जाति-अवस्था-बल का सम्बन्ध,

दूसरे को तुच्छ मान करता जो घमण्ड |

मन-इच्छा-पूर्ति का अभिमान जिसे रहता,

मन-विरुद्ध होने पर जिसे क्रोध होता,

कर्तव्य का विवेक नष्ट हो जाता,

कोमलता का मन से अभाव हो जाता,

क्षमा-दया का भाव न रहता,

हिंसा-क्रूरता-मन में कठोरता रहती,

सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म का भाव न रहता |

अज्ञान भाव युक्त वह प्राणी

आसुर स्वभाव युक्त कहलाता |'

'हे अर्जुन !

तू शोक न कर |

तू दैवी-सम्पदा युक्त भाव लिए जन्मा |

यह दैवी-सम्पदा मुक्ति दिलवाती |

आसुरी-सम्पदा युक्त मानव

बन्धन में इस संसार के बँधा रहता |

न छूटना चाहता, न छूटने का यत्न करता |'

'हे अर्जुन !

सृष्टि में दैवी-सम्पदा युक्त प्राणी भी,

सृष्टि में आसुरी-सम्पदा युक्त प्राणी भी |

दैवी-सम्पदा शुद्ध-सात्विकतामयी |

आसुरी सम्पदा की माया अब मैं तुझको

सुनाता हूँ |'

'एक ही धर्म मनुष्य मात्र का,

लोकहित कर्म में प्रवृत्त रहने का |

सदा-सर्वदा अकर्मव्यता से

निवृत्त रहने का |'

'आसुरी स्वभाव

न प्रवृत्ति रखता कर्म की,

न निवृत्ति भाव भी मन में रखता

न भीतर-बाहर की शुद्धि रखता,

न शुद्ध आचरण होता

और न सत्य भाषण ही होता |

वह मिथ्याचारी होता,

वह दुराचारी होता |'

'वह जगत को आश्रय रहित कहता,

न ईश्वर आधार, न सत्य |

यह जीव स्त्री-पुरूष के संयोग से जन्मा,

'काम' ही इसका कारण

नहीं और कोई प्रयोजन |'

'नास्तिक भाव लिए मानव,

आत्मा की सत्ता न स्वीकारे |

वह केवल इस देह की सत्ता स्वीकारे |

इस मिथ्या ज्ञान को ज्ञान माने |

इसे जीवन का आधार माने |'

'वह भौतिक जगत

में ही सुख खोजता,

स्वभाव सरलता खो देता,

मन्द बुद्धि से निश्चय होता,

भोग-सुख ही लक्ष्य होता |

अपने हित में

सब कर्म करते |

लोकहित नहीं अहित का सोचे |

उपकार नहीं अपकार की सोचे |'

'समस्त कर्म में अहम् महान |

मन-बुद्धि का एक ही कर्म,

विनाश हो जाए

चाहे जगत का,

पूरे हो जाए सब मेरे

काम |

वह स्वयं को पूज्य माने,

धन-मान-प्रतिष्ठा ही श्रेष्ठ माने |

रूप-गुण-जाति

के नशे में चूर

स्वयं को श्रेष्ठ माने |'

'इच्छा- आकाँक्षा उसकी असीम,

मिथ्या-भाव में वह जीता,

भ्रष्ट-आचरण ग्रहण किए,

वह इच्छापूर्ति में रत रहता |

वह चिन्ता मग्न रहता |

उसे सदा 'कल' की चिन्ता रहती |

वह विषय-भोग में रत रहता |

वह विषय-संग्रह में रत रहता |

'और अधिक सुख' की इच्छा रहती,

जो सुख मिला, वह भोगता

पर कभी आनन्द न पाता |'

'जीवन तो उसका कल की चिन्ता में डूबा रहता |

अपना आज तो बीत जाता,

मृत्यु-पर्यन्त तक चिन्ता रहती,

कब क्या होगा, कैसे होगा ?

कौन मेरे साथ होगा ?

मेरे इस सुख-संग्रह का क्या होगा ?

वह कल्पनाओं में जीता,

वह आशाओं के दीप जलाए रहता |

वह एक आशा से दूसरी |

दूसरी से तीसरी

असंख्य आशाओं के बन्धन में

फँस जाता |

विषय-भोग में काम-क्रोध

का आश्रय होता |

धन-संग्रह की चिन्ता रहती,

न्याय-अन्याय

हित-अहित

किसी और का नहीं,

बस अपना न्याय,

और अपना हित,

जीवन का लक्ष्य होता |'

'हर क्षण एक ही

मान रहता |

आज यह पा लिया,

अब यह भी मैं

पा लूंगा |

एक इच्छा पूर्ण हुई,

मेरे पुरूषार्थ से ही

पूर्ण हुई,

अब मैं दूसरी पाने का यत्न करूँगा |

अब इतना धन संग्रह कर लिया,

कल इतना मैं कर लूँगा |

पल-प्रतिपल मैं आगे बढूँगा ,

ऊपर उठूँगा |

हर इच्छा- आकाँक्षा की पूर्ति करूँगा |'

'वह शत्रु मेरा, मैंने उसे परास्त किया |

मैं अपने हर शत्रु का नाश करूँगा |

जो मेरी राह में आएगा,

जो मेरे ऐश्वर्य को घटाएगा

मैं उसका नाश करूँगा |

मैं ही ईश्वर हूँ ,

मैं ही नियन्ता |

मैं सुख-साधन जुटाता,

मैं ही इसे भोगता |

मैं सब सिद्धियों का ज्ञाता,

मैं बलवान

मैं ही सुख- प्रदाता |

मैं धनी बहुत,

मित्र-बन्धु-कुटुम्ब मेरा

है बहुत बड़ा |

मेरी एक आवाज पर

विश्व खड़ा |

मैं प्रसन्न तो यज्ञ करूँगा |

सुख कामना में मौज करूँगा |

जो मेरा हित करेगा,मैं उसे दान दूँगा |

मैं आनन्द लूँगा ,

मैं जीवन-पर्यन्त अब मौज करूँगा |'

'यह अज्ञान-जनित मोह,

यह जाल उसे बाँधे रहता |

विविध विषयों में चित्त

भटका रहता |

वह इस मोहजाल मेंफँसा रहता |

विषय भोग जीवन का ध्येय,

वह इच्छा-पूर्ति के मद में फँसा रहता |

वह आसक्ति में डूबा रहता,

वह दम्भ-मद-काम-क्रोध का साथी रहता,

ऐसा आसुर स्वभाव अपवित्र भाव लिए

नरक का वासी होता |

वह परम सुख से परे होता,

वह जीवन पर्यन्त भटकता रहता |'

'मैं यज्ञ करूँगा,

मैं दान दूँगा |

मैं दानी बडा सबसे,

मैं महायज्ञ हूँ करवाता |'

यह भाव दम्भ से प्रेरित |

यह भाव स्वयं को सर्वोपरि, श्रेष्ठ मानने वाले

मद-आसक्ति में डूबे,

धन-मान के गर्व में डूबे,

आसुरी-सम्पदा युक्त प्राणी के |'

'नाम-दर्शन में यज्ञों का प्रतिपादन करते,

नाम की महिमा में शास्त्र विधि रहित

पूरे ढोंग से यज्ञ का आयोजन करते |

वे तामस-यज्ञ कहलाते,

वह ईश्वर-भक्ति के लिए नहीं,

स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त होते,

जग में अपनी प्रतिष्ठा हेतु होते |'

'आसुरी सम्पदा युक्त पुरूष

अहंकार में डूबे,

बल-कामना-

मद-काम-क्रोधसे प्रेरित

दूसरों में केवल दोष खोजते,

दूसरों के गुणों का खण्डन करते,

दूसरों की निन्दा करते,

औरों की बात क्या

वह सन्त-महात्मा के निन्दक होते,

ईश्वर में भी दोष ढूँढते |'

'द्वेष भाव से युक्त

ये प्राणी पापाचारी कहलाते,

ये क्रूर कर्मी कहलाते |

वे बार-बार जन्म लेते,

बद से बदतर योनियों में

बार-बार जन्म लेते |

मोह-काम-क्रोध-लोभ

के वश में रहते |

ये काम-क्रोध और लोभ भाव,

आत्मा को अन्धकारमयी बनाते,

उसे मूढ़ योनि मे ढ़केलते

जीवन को दुख:मयी बनाते |'

'सारे अनर्थो

के मूलभूत

काम-क्रोध-लोभ ही

समस्त अधोगति का कारण हैं |

इन्हे त्याग दो,

इन्हे त्यागना ही

जीवन की दुर्दशा

का निवारण है |

हे अर्जुन!

इन तीनों नरक के द्वारों से

मुक्त पुरूष,

अपने कल्याण हेतु करता आचरण |

वह परम गति को पाता|

वह मुझे प्राप्त हो जाता |

वह दैवी सम्पदा युक्त होकर

इस जीवन से मुक्ति पा लेता |'

'जो पुरूष शास्त्रविधि का त्याग करते,

मनमाना आचरण करते

वह न सिद्धि पाते,

न सुख पाते,

न शाँति कहीं मिल पाती

वह परम गति नहीं

अधोगति के भोगी बनते |'

'हे अर्जुन !

तू शास्त्र- सम्मत हो कर्म कर |

यह शास्त्र कर्तव्य का भेद बतलाते,

यह शास्त्र ही कर्म का निर्धारण करते |

तू निष्काम भाव से कर्म कर |

हे अर्जुन!

निष्काम कर्म ही शुभ कर्मो का हेतु होता

वही ईश्वर प्राप्ति का साधन होता |'

16) [**श्रद्धात्रय विभाग योग**](http://audiohindi.com/NEWkavitameingita/shradhatreyvibhagyog.html)

अर्जुन बोला

'हे कृष्ण !

मैं समझ गया,

काम-क्रोध-लोभ

से जीवन नरक होता |

हम जीवन सरल बना सकते,

त्याग इन्हें

परम गति को पा सकते |'

'मैं समझ गया

जो शास्त्र विधि का त्याग करे,

मनमाने ढंग से कर्म करे |

उसके कर्म सफल नही होते |

सिद्धि भाव से किए कर्मों से

सिद्धि नही कभी मिल पाती |

सुख हेतु किए कर्मों से

सुख नहीं कभी मिल पाता |'

'न करने योग्य कर्मों को जानो |

न करने योग्य कर्मों को त्यागो |

निष्काम भाव से शास्त्र विधि युक्त

कर्म करो |'

'ऐसे में हे प्रभु !

ऐसे बहुत से प्राणी जन हैं ,

श्रद्धा बहुत

पर शास्त्र विधि का ज्ञान

नहीं है |

वे श्रद्धा से पूजा करते हैं |

शास्त्र विधि का सोचा नहीं,

अज्ञान है,

विधि का त्याग है |

ऐसे प्राणी की स्थिति कैसी ?

वह सात्विकी ,

राजसी या कि,

तामसी है ?'

श्री भगवान बोले,

'एक श्रद्धा शास्त्र-अध्ययन से,

ज्ञान से, चिन्तन से |

दूसरी स्वयं स्वभाव स्थित |

कर्मों से, संस्कारों से |

मन में छिपे पूर्व जन्म के संस्कारों से |'

'यह श्रद्धा सात्विकी, राजसी

और तामसी होती |

जैसा जिसका स्वभाव होता,

जैसा जिसका भाव होता,

वैसा ही इसका भेद होता |'

'हे भारत!

गुणातीत ज्ञानी तो गुणों की खान होता,

उसकी श्रद्धा में स्वभाव भी होता, ज्ञान भी होता |

यह भाव तो साधारण प्राणी का,

जिसमें देह का अभिमान होता |

ऐसे प्राणी की श्रद्धा,

कर्मों के अनुरूप होती |

जैसे जिसके कर्म होते,

वैसा उसका स्वभाव होता |

जैसा जिसका स्वभाव होता |

वैसा ही अन्त:करण होता |

ऐसे में जिसकी जैसी श्रद्धा होती,

वैसा ही वह स्वयं होता |'

'सात्विक भाव मयी

देवताओं को पूजता |

राजसी भाव मयी

यक्ष-राक्षसों को पूजता |

और तामस भाव मयी

भूत-प्रेतों को पूजता |

जैसे देव होते,

वैसा ही पुजारी होता |

वही रूप, गुण

वही स्थिति पाता |'

'जो तप शरीर को कष्ट पहुँचा कर,

इन्द्रियों को पीड़ित कर किया जाता

वह शास्त्र-विधि रूप नहीं होता |

वह केवल मन कल्पित होता,

दम्भ-अहंकार-युक्त होता |

आसक्ति-कामना-बल-युक्त होता |

शरीर को कष्ट पहुँचा कर,

अन्त:करण में स्थित मेरे अंश को तड़पा कर,

वह बोध शक्ति से रहित,

मूढ़-प्राणी जन अज्ञानी होता,

वे आसुर स्वभाव युक्त होता |'

'हे अर्जुन !

यह स्वभाव स्थिति

बहुत विचित्र |

कर्म ही नहीं

भोजन भी स्वभाव-प्रेरित

होता |

तीन रूप प्राणी के

तीन भाव का भोजन होता |'

'यज्ञ-दान व तप के

भी तीन भेद ही होते |

अन्त:करण की

स्थिति में

भोजन-यज्ञ-तप-दान

सभी का बहुत योगदान |

ऐसे में तू

इन सबकी प्रकृति जान |'

'आयु-बल बुद्धि

आरोग्य-सुख-प्रीति जो बढ़ाये,

ऐसा आहार ही सात्विक मन को भाये |

रस युक्त-चिकने पदार्थ,

ओजमयी, प्रीतिवर्धक आहार,

मन को प्रिय लगें |

सात्विक गुण युक्त मन में सात्विकता बढ़ायें

यही आहार मन ग्रहण करे |'

‘कड़वे- खट्टे-लवणयुक्त

गरम-तीखे-रूखे-दाहकारक

खाते समय रूचिकर लगें ,

पर तन-मन में दु:ख दें ,

चिन्ता उत्पन्न करे,

रोगों को जन्म दें |

वह रूचिकर लगें राजसी पुरूषों को |'

'अधपका भोजन,

रसरहित-दुर्गन्ध युक्त

बासी-अपवित्र भोजन

तामस भाव युक्त पुरुषों का प्रिय हो |'

फल वही अच्छा

जो पूरी तरह पका हुआ |

अग्नि के संयोग से,

हवा से

या बेमौसम से

सूखा हुआ फल

भोजन तामसी कहलाए |

स्वभाव से दुर्गन्धयुक्त

भोजन,

बीती रात का भोजन

विकृति उत्पन्न करे |

माँस-मदिरा निषिद्ध

न माने जो

वह तामस भावमयी कहलाए |'

भोजन के भेद से

स्वभाव की पहचान हो |

मन में बसी इच्छाओं

की पहचान हो |

'तीन भेद भोजन के

अब तीन भेद

यज्ञ के बतलाता हूँ |'

'शास्त्रविधि से नियत यज्ञ

करना ही कर्तव्य है |

वर्ण-आश्रम का जो कर्तव्य निभाता,

शास्त्र विधि से नियत वही यज्ञ कहलाता |

मन दृढ़ - निश्चय युक्त हो,

निष्काम भाव स्थित मन में हो,

अपने कर्तव्यों का पालन हो,

वही यज्ञ सात्विक हो |'

'आस्था न हो यज्ञ की,

पर यज्ञनिष्ठ होने की चाह हो,

जग दिखावे की इच्छा हो

दम्भ युक्त भाव मयी यज्ञ यह कहलाता |

लोक-परलोक के सुखों की कामना

लिए यह यज्ञ

शास्त्रविहित-श्रद्धापूर्वक होने पर भी

राजसी-यज्ञ कहलाता |'

'शास्त्रविधि रहित यज्ञ,

मनमाने रूप में कर्म

कर्मो के प्रति अश्रद्धा ,

नियम-मन्त्र से रिक्त,

केवल अहम् भाव से युक्त

अपनी इच्छापूर्ति को,

बिना लोकहित हेतु दान

बिना लोकहित की श्रद्धा के

केवल अपने स्वार्थ को

ज्ञानशील ब्राहम्ण

के प्रति मन में न हो,

आदर भाव,

वह यज्ञ,

वह यज्ञपात्र तामसी कहलाता |

ऐसा व्यक्ति दम्भी-मूढ़ भाव युक्त कहलाता |

वह मान-मद-मोह जाल में फँसा होता |

वह तामसी होता |

उसका यज्ञ कभी सफल न होता |'

'पवित्रता

सरलता

ब्रह्मचर्य

अहिंसा का पालन,

देव-गुरु,

माता-पिता

और बड़ो का,

ज्ञान योगी,

कर्मयोगी सभी का

यथायोग्य आदर ही कर्तव्य,

यही इस देह का तप कहलाता |

यही इस देह को पवित्रता प्रदान करता |'

'निन्दा-चुगली से दूर रह,

वाणी में उद्देग न हो,

प्रिय लगें सभी को जो वचन,

हित में सबके स्थित हो मन, वचन,

वेद-शास्त्रों का अध्ययन,

प्राणी मात्र का हित ही हो प्रायोजन,

ईश्वर के नाम का हो उच्चारण

वह वाणी को मृदुल रखे,

वाणी शुद्ध पवित्र बन जाए,

इसीलिए यह वाणी का तप कहलाए |'

'निर्मल हो मन,

चित्त रहे प्रसन्न,

मन सदा शाँत-शीतल रहे,

प्रभु-चिन्तन में हो ध्यान-मग्न,

मौन रहे, मुस्काता रहे,

अन्त:करण स्थिर हो, वश में हो,

दया-क्षमा-प्रेम-विनय का

विकास हो मन में ,

मन दोष रहित हो जाए,

मन पवित्र हो जाए,

ऐसा तप मानस-तप कहलाए |'

'जो प्राणी

सुख भोग की

या

दु:ख की निवृति रूपी

फलेच्छा न करता,

निष्काम भाव से

मन-देह-वाणी के तप से

पवित्र होता,

वह श्रद्धा-प्रेम से युक्त होता |

उसका तप सात्विक होता |

वह सात्विकता की पदवी पाता |'

'जो तप

स्वयं को सत्कार-मान-पूजा हेतु होते,

जो तप स्वार्थ प्रेरित होते,

दम्भ भाव से युक्त होते

जग-दिखावे के लिए होते,

वे तप राजसी कहलाते |

ऐसे तप का फल भी तो निश्चित न होता |

जो कुछ मिलता वह भी क्षणिक होता |

ऐसा तप मन को भटकाता |'

'तप तामस होता

जब मूढ़ भाव से,

हठ से,

मन-वाणी-देह की पीड़ा से,

दूसरे के अनिष्ट हेतु

जिसका प्रायोजन होता |

तामसी भाव का तप वर्जित है,

वह शाँति -पवित्रता-सरलता नही,

मूढ़ बुद्धि बनाता, जीवन की दुर्दशा का कारण होता |'

'अब तीन भेद दान के जानो,

अपने जीवन का कर्तव्य पहचानो |

वर्ण आश्रम-अवस्था-परिस्थिति

के अनुरूप दान देना कर्तव्य सभी का |

देश-काल-जाति का बन्धन न हो,

आतुर दशा ही पहचान हो |

बदले में उपकार पाने कि इच्छा न हो,

अपना स्वार्थ भी मन में न हो,

सामर्थ्य-अनुरूप जो दान दे,

भूखे को अन्न,

प्यासे को पानी,

नंगे को वस्त्र,

रोगी को औषधि,

अनाथ को आश्रय,

यह सब सात्विक दान कहलाता |

प्राणी यह कर्तव्य निभा सात्विकता की श्रेणी पाता |'

'जो दान किसी के

हठ-भय के बल पर,

मन में विषाद-दु:ख पाकर,

निरुपाय होकर दे

या फिर

उपकार पाने कि इच्छा से,

काम मिलने की आशा से,

स्वार्थ-साधन की भावना से दिया जाता,

वह दान राजस कहलाता |

ऐसे दान से

मान- बढ़ाई -प्रतिष्ठा-प्रशंसा तो मिल जाती,

वह पर क्षणिक होती,

वह राजसी भाव युक्त होती |'

'जो रूखे मन से दान करे ,

दान दे, तिरस्कार करे,

कडवे वचन कहे,

अनादर करे,

अपमान करे |

जिसे दान की नहीं जरुरत,

ऐसे प्राणी को दान दे,

जिसका पेट भरा हुआ,

तन वस्त्रों से ढ़का हुआ,

जिसके पास

कमी नही धन की,

ऐसे प्राणी को

दम्भ भाव से,

अहित करवाने के भाव से

निन्दा भाव से,

पाखण्ड भाव से

दिया दान,

तामसी दान कहलाता |

वह दान नरक का भागी बनाता |'

'ऊं, तत्, सत्,

तीन नाम

सच्चिदानन्दन ब्रह्मा के |

ब्रह्मा से उत्पत्ति हुई |

प्रजापति ब्रह्मा की |

आदि काल में ब्रह्मा से

उत्पन्न हुए

समस्त ज्ञानीजन,

वेदों में रचे

समस्त कर्तव्य कर्मों के विधान,

और

समस्त यज्ञ-तप-दान |'

'कर्ता-कर्म और कर्मविधि से

सृष्टि का निर्माण हुआ |

वेद मन्त्र हैं विधान सभी,

यही श्रेष्ठ पुरूषों की

जीवनbचर्या सचांलित करते |'

‘ऊँ पवित्र नाम परमात्मा का

ऊँ शब्द के उच्चारण से

समस्त कर्तव्य कर्म आरम्भ होते |

शास्त्र विधि युक्त समस्त

यज्ञ-दान-तप संचालित होते |'

'तत् नाम परमात्मा का |

समस्त जगत की उत्पत्ति का कारण,

समस्त जगत का वही आधार |

कर्म यज्ञ-ज्ञानयज्ञ

वाणी-शरीर व मानस तप

का मानव बस निमित्तमात्र |

अहम्-ममता-कामना-आसक्ति का

करके सर्वथा त्याग,

कल्याण होगा,

तत् में स्थित होगा

मन का हर भाव |'

'सत्,

सत्य भाव परमात्मा का |

उसका अस्तित्व सदा रहता,

वह अविनाशी,

वह इस सृष्टि का श्रेष्ठ भाव |

शास्त्र विहित सब शुभ कर्मो का

निष्काम भाव से पालन हो

सतकर्म यज्ञ वह कहलाए,

वही ईष्ट भाव से परमात्मा के

प्राणी का मेल करा जाए |

यज्ञ-तप-दान में निष्ठा स्थापित रहे,

कर्म समस्त सत् का रूप

वही ईश्वर का रूप बन जाए |'

'हे अर्जुन!

श्रद्धा भाव का महत्व बड़ा |

श्रद्धा बिना यज्ञ-तप-दान

और समस्त कर्म

समस्त दु:खों का कारण होते |

शुद्ध अन्तकरण से

स्वयं को निमित्त मात्र मानो |

शास्त्र विहित कर्म

ऊँ-तत्-सत्-भाव

से प्राणी का मिलन कराते |

वे ही कल्याण कारक होते |

17) **मोक्ष सन्यास योग**

हे महाबाहो तुम सर्वशक्तिमान हो

तुम सर्वान्तर्यामी!

कहीं ज्ञान योग का उपदेश दिया,

कहीं कर्म योग का मार्ग् समझाया

मुझे तुमने हे ॠषिकेश,

पर्मात्मा प्राप्ती का हर भेद समझाया

एक भाव अब शेष मेरा

मुझे ज्ञान योग

और

फलासक्ती भाव का तत्व,

अलग करके समझाओ !

भाव प्रथक हो दोनो के

लक्षण प्रथक करके बतलाओ

श्री कृष्ण तब बोले

कर्मो के विधान की व्याख्या

सब ज्ञानी जन अपने स्वभावानु सार करते

एक ही शब्द से नये-नये अर्थ निकालते !

सब अपने-अपने मत स्थापित करते !

कितने ज्ञानीजन हैं,

जो कम्याकर्मो के त्याग को सन्यास कह्ते हैं !

कर्मो का स्वरूप से त्याग,

ही सन्यास कह्ते !'

और बहुत से विचार कुशल ज्ञानी

समस्त कर्मो के अनुष्ठान से प्राप्त

फल के त्याग को सन्यास कह्ते !

नित्य-अनित्य वस्तु का विवेचन करके,

निशिचत कर लेते,

कर्तव्यो कर्मो का अनुष्ठान करके

केवल कर्मो के फल का त्याग कर देते |'

विद्वान ऐसे भी बहुत

जो कर्मो को दोषयुक्त कहते |

वे कृष्ण के आरम्भ से ही

पाप का सम्बन्ध जोड देते,

और समस्त कर्मो के त्याग को ही

सन्यास कहते |'

' ज्ञानी जन ऐसे भी होते

जो यज्ञ-तप-दान रुप कर्मो को

दोषयुक्त नहीं कहते

वे केवल निषिद्ध कर्मो के त्याग को कहते,

कर्तव्यकर्मो के निर्वाह को उचित कहते |'

विधान रचा ईश्वर ने ,

व्याख्या की ज्ञानी जन ने |

किसी ने एक मार्ग बताया,

किसी ने नया मार्ग सुझाया |

राहें अलग-अलग बन गई ,

तत्व वही फिर भी रहा |

ईश्वर प्राप्ति को

परम आनन्द पाने को

नए-नए मार्गो से

प्राणी अग्रसर रहा |

नए-नए रुप बने

सृश्‍टि भी ,

नए-नए आयाम रचे

सृश्‍टि भी ,

कर्म का स्वरूप

'वही एक' रहा |

' हे पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन |

अब तू मेरा निश्चय सुन |

सन्यास और त्याग का भाव समझ |

पहले त्याग की बात कहता हूं |

इसके तीन भेद समझाता हूं |

त्याग सात्विक्-राजस-तामसी होता |

इसका रुप कर्तव्य-कर्म निर्धारित करता|'

'यज्ञ-दान और तप रूप कर्म ,

कभी नहीं त्यागने योग्य होते |

शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म का त्याग

हितकारक नही होता |

जिस आश्रम में जीवन को जो

आया,

जिस कर्म-विभाग को जिसने अपनाया,

वह कर्तव्य मात्र तुम मानव का मानो |

यही यज्ञ-तप-दान कहलाता,

यही जीवन को पवित्र बनाता |'

'हे पार्थ !

यह कर्म यज्ञ,

यह ज्ञान यज्ञ,

यह मन-वाणी-शरीर का तप

और

समाज-निर्माण को यथायोग्य दान

जीवन का ध्येय जान |'

'समस्त कर्तव्य कर्मो

का अनुष्ठान करो |

जीवन सरल-पवित्र बने ,

बस आसक्ति-फल का

लोभ न हो ,

यही भाव ही त्याग कहलाए,

यही कर्म बन्धन की मुक्ति कहलाए,

यही मेरा उत्तम मत कहलाए |'

'ममता-आसक्ति को त्याग सर्वथा

कर्तव्य कर्म का हो अनुष्ठान,

लोक-परलोक के भोगों में

न रहे स्थित जब ध्यान,

वही भाव त्याग कहलाता

वही कर्म बन्धन से मुक्ति दिलवाता

वही परमपद को प्राप्त करवाता |'

वर्ण

आश्रम

स्वभाव

और

परिस्तिथी

से कर्म निर्धारित होते |

यज्ञ

तप

अध्ययन-अध्यापन

उपदेश

युद्ध

प्रजापालन

कृषि-व्यापार-सेवा

सब कर्तव्य कर्म की श्रेणी में आते |

अपने कर्तव्य में

लग्न भाव से जो जुटा रहता,

कर्मो का जो त्याग न करता |

अपने कर्म को,

अपने धर्म को ही उत्तम जाने |

वही मानव धर्म का

स्वरुप पहचाने |

वही कर्मो की परम्परा

को समझे ,

वही कर्म का भाव जाने |'

'जो कर्तव्य कर्म

के त्याग को मुक्ति का मार्ग माने ,

जो कर्तव्य भूल

मोहजाल में फंस जाए,

कर्तव्य को भूल अपने

मन को भटकाए,

वह तामस त्याग हो ,

वह व्यक्ति तामसी कहलाए |'

'मोह त्यागो ,

आसक्ति त्यागो

कर्म अपना ही अपनाओ |

कर्तव्य कर्मो की श्रेणी कभी निम्न

नही होती |

कर्तव्य कर्मो से ही

समाज का निर्माण होता है |

कर्तव्य परायण मनुष्य ही

एक नए युग का प्रवर्तक बनता है |

कर्तव्य-पालन समाज के उत्थान का

आधार है |

ऐसे में कर्तव्य हर किसी का

अपने में

महान है |'

'कर्मो के अनुष्ठान में

मन-इन्द्रि य-शरीर

सभी का योगदान ,

अथक प्रयत्न,

परिश्रम

नियम पालन

से ही कर्म होता सम्पन्न |'

'ऐसे परिश्रम को

कष्ट माने जो ,

शारीरिक क्लेश

समझे जो,

ऐसे में परिश्रम से

बचने हेतु

यह कर्मो का त्याग

राजस कहलाता |

ऐसा त्याग कर्म बन्धन से

मुक्ति नही देता,

उल्टा कष्ट देता |

'ऐसे में , हे अर्जुन!

शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म

ही धर्म है |

बस इसी भाव से जीना सीखो ,

आसक्ति-फल का त्याग करो ,

बस अपने कर्म में जुटे रहो |

वही त्याग सात्विक कहलाएगा,

वही मनुष्य को सात्विकता देगा,

वही परम पद की श्रेणी देगा |'

'निषिद्ध कर्मो का त्याग

द्वेष् - बुद्धि से नही ,

कर्तव्य भाव से जो करता,

लोक-संग्रह भाव से जो करता,

और

समस्त कर्तव्य कर्मो

का जो अनुष्ठान

फल आसक्ति रहित हुए करता,

वह

शुद्ध

सतगुणयुक्त

बुद्धिकुशल,

संशय रहित

कहलाता,

वही सच्चा त्यागी होता |'

'यह देहधारी

यह मनुष्य

कर्मो का सर्वथा त्याग नही कर सकता |

कर्म में

केवल शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म ,

और

उनके फल में

ममता-आसक्ति-कामना

का त्याग ही

कर्म यज्ञ का अनुष्ठान कहलाता

ऐसा कर्म योगी ही

कर्म फल त्यागी कहलाता |

वही सच्चा त्यागी कहलाता |'

मेरा कृष्ण

भाव सभी जाने ,

मन में आई हर शंका को पहचाने |

कर्म फल का त्याग ही सच्चा त्याग है

पर कर्म फल दिए बिना नही रहता |

आज नही तो कल,

कल नही तो परसो

फल तो जरुर मिलेगा

बीज बोया है तो वृक्ष जरुर निकलेगा |

ऐसे में कर्म फल त्याग से कैसे

मानव

कर्म बन्धन रहित हो सकता?

कैसे मानव कर्म फल त्याग से

सच्चा त्यागी हो सकता?

जो कर्मो में

ममता-आसक्ति-कामना का

त्याग ना करते,

कर्मो से वह फलेच्छा रखते

कर्मो के अनुरुप वह

फल अवश्य पाते |

शुभ कर्म करते

भोगों की इच्छा रखते

वे अवश्य उन्हे पा लेते,

इस देह को त्यागने के बाद

वह पुन: कर्मो के अनुरुप

फल पाने को आते |'

जो दु:ख देते ,

पाप कर्म करते

वे पुन: भोगते दुखो को

एक नया शरीर पाते

एक नई योनी ही पाते |

कभी शुभ कर्म

कभी निषिद्ध कर्म में रत मानव

सभी मिश्रित फल पाते |

जैसा वृक्ष होता,

वैसा ही फल होता |

जैसा फल होता

वैसे ही नए बीज का निर्माण होता |'

'नए-नए रुप बदलता मानव,

नए-नए युग में जन्म लेता

कर्मो में फल की ईच्छा

जिसकी जितनी प्रबल होती

वैसी ही वह श्रेणी पाता |

कर्मो से मुक्ति नही मिल पाती |

मानव जन्म के बाद

पुन: जीव धरा पर आता,

कर्मो की एक नई श्रेणी

कर्मो से एक नए वर्ण में जन्म पाता |'

' श्रेष्ठ वही जो

कर्मो में संलग्न रहे '

फल की चिन्ता न करे |

ममता-आसक्ति-कामना का त्याग करे,

वह कर्म बन्धन से रहित हो जाए,

वह किसी काल में बंधा न हो

वह इस कर्म बन्धन से मुक्ति पा ले |'

' हे महाबाहो !

कर्मो का पूर्ण हो जाना

ही कर्मो की सिद्धि कहलाता |

तत्व ज्ञान को साधन मान,

ज्ञान योग से उपाय जान,

समस्त कर्म प्रकृति प्रेरित

आत्मा सर्वथा अकर्ता !'

'पांच भाव कर्म सिद्धि के

इन्हें जान,

संचित कर ज्ञान,

पहला, करण और क्रिया का आधार

रूप यह शरीर,

दूसरा यह प्रकृति स्थित पुरुष

या भोक्ता |'

'तीसरा भीतर-बाहर का कारण

यानि

मन-बुद्धि-अहंकार का भाव

और

सभी सहयक साधन |'

'चौथा भाव कर्म सिद्धि का

भिन्न-भिन्न चेष्टाओं का रूप,

शरीर को स्पंदित जो करती,

प्रयत्न में संलग्न जो रखती,

बार-बार अभ्यास में जो

रत रखती

वे सभी चेष्टाएं कर्म सिद्धि

को प्रेरित करती |'

'और् पांचवा भाव

बने हमारे सब

शुभ-अशुभ कर्मो के

संस्कार|

यही संस्कार प्रेरित करते

शरीर-आत्मा-मन-बुद्धि

अहंकार को बार-बार

चेष्टा करने को

कर्म में रत रहने को |'

'मनुष्य शरीर बड़ा अमूल्य

यही पाकर जीव

पाप-पुण्य की ओर

बढ़ सकता,

नित-नवीन कर्म कर सकता |

अन्य योनियां

केवल भोग योनियां हैं

वहां नवीन कर्मो का योग नहीं होता |

'मनुष्य रूप में

मन-वाणी-शरीर से,

वर्ण-आश्रम-प्रकृति

और परिस्थिति के भेद से

न्यायपूर्वक

कर्म यज्ञ

ज्ञान यज्ञ

दान

तप-अध्ययन-अध्यापन

युद्ध-कृषि-वाणिज्य

और

समस्त सेवाधर्म निभा सकता |

वह शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मो को

इन पांच भावों के संयोग से

निभा सकता |'

'वही मनुष्य

शास्त्र विरुद्ध

हो कर् भी

इस जीवन में

सब प्रतिकूल कर्म भी करता |

यह पांच भाव

ही सभी

शुभ-अशुभ कर्मो को

संचालित करते |

कर्म की पूर्णता यही स्थापित करते |'

'बिना कर्तापन के

कर्म कभी कर्म नहीं हो सकता |

अशुभ बुद्धि के भाव से

मनुष्य कर्मो के संचालन में

आत्मा को कर्ता जब मानता

वह अज्ञानी होता

वह यथार्थ से परे होता|

जो समस्त कर्मो को

प्रकृति का खेल समझता,

आत्मा को अकर्ता मानता

वही यथार्थ समझ पाता

इस जीवन का |'

कर्मो में कर्ताप्न का

अभिमान नही जिसमें,

"मैने कर्म किया'

'मेरा यह कर्तव्य है'

लेशमात्र भी भाव नही यह जिसमें,

वही जान सका आत्मा के शुद्ध को |

अहम् भाव वह त्याग पाता

ममता-आसक्ति - कामना का

सर्वथा अभाव कर पाता|

तभी उसके सभी कर्म

लोक हित हेतु होते |

आचरण मे पाप कर्म का अभाव हो जाता |

बुद्धि उसकी सांसारिक पदार्थो से

कर्मो की क्रिया में

लिपायमान नहीं होती |'

'लोक दृष्टि से वह कर्म करता,

लोकहित वह स्वधर्म कहता |

लोकहित में

स्वधर्म रक्षा में

पापाचारी को युद्ध में मार कर

वह गर्व नहीं करता,

अपने पौरुष का

अभिमान नहिं करता,

वह सर्वथा विरक्त होता

परिस्थिति के अनुसार

प्रवृत्त होता,

ऐसा स्वधर्म यज्ञ होता,

इससे पाप नही होता |'

'यह अहम् भाव्

भिन्न्ता स्थपित करता

मानव में|

अहम् भाव न रहे

मन में,

आत्मा-परमात्मा में

भेद रहे न,

सामान्य जीवन लगने लगे,

केवल इस देह का सम्बन्ध रहे

वही अहम् भाव में लिप्त रहे,

इस देह से उपर कहीं

कर्तापन व भोक्तापन का भाव् न रहे|'

'ज्ञाता ज्ञान से निश्चय करे

ज्ञेय के स्वरुप का,

तीनो के सन्योग से

प्रवर्ती कर्म ही उत्त्पन्न हो|

कर्ता बनकर

मन-बुद्धि-इन्द्रिय

के संयोग से

प्रवर्ति कर्म ही उत्पन्न हो |

कर्ता बनकर

मन-बुद्धि-इन्द्रिय

के सन्योग से

क्रियाशील हो जब् मानव

तभी कर्म का संग्रह हो |'

'गुण में से ही गुण निकले,

स्रष्टि गुणों की खान |

एक भाव से सतगुण आए

दूसरा भाव रजगुण लाए,

तीसरा भाव तमोगुण प्रधान,

ऐसे में तू ज्ञान-कर्म और कर्ता के

तीनों भेद अब जान|'

'ज्ञान भाव हे अनुभव से

एक भाव में

ब्रह्मा दिखे,

लो कहित की आस्था रहे

भिन्न-भिन्न प्राणी समूह,

अभिन्न भाव में एक दिखे |

यथार्थ ज्ञान का भाव बने,

समग्र सृष्टि जब

अविनाशी ब्रह्मा का अंश लगे |

अनेकता में एकता है

परम ज्ञान|

यही कहलाता सात्विक ज्ञान|'

सम्पूर्ण जगत में

स्थित प्राणियों की आत्मा

को एक मान|

केवल शरीर से भेद जान|

जो प्राणी इस भाव को न माने,

आत्मा को शरीर के भेद से

भिन्न-भिन्न रूप का माने,

सब प्राणियों को विलक्षण जाने,

नए-नए भाव से

नए-नए रूप का माने,

अविनाशी ईश्वर की सत्ता एक,

हर आत्मा का रूप भिन्न,

हर भाव का अपना रूप,

हर रूप का अपना अस्तित्व,

यह ज्ञान नाम मात्र का होता,

यही ज्ञान राजस कहलाता,

आत्म तत्व को भिन्न करवाता|'

और जो मनुष्य

उलट भाव से

प्रकृति स्थित शरीर को ही

अपना स्वरूप माने,

इसी में आसक्ति रखे,

इसी के सुख साधन में जुटा रहे,

इसी से सुख का उपयोग करे,

इसी के दु:ख से दु:ख का आभास करे,

इसी के कारण से

अपना सर्वनाश माने,

आत्मा को भिन्न या

सर्वव्यापि न माने

ऐसा ज्ञान,

ज्ञान नही होता,

ऐसा ज्ञान तामसी होता|

यह मुक्ति-विवेक रहित होता,

पर तमो गुणी इसे ज्ञान कहता,

वह इसकी विवेचना करता,

इसी ज्ञान में स्थित रहता,

इसी ज्ञान को सत्य कहता,

वह तामस भावमयी

यथार्थ ज्ञान से दूर रहता|'

'नियत-कर्म

परिस्थिति समझ

प्रकृति से तुमने जो अपनाया,

लोकहित भाव जब तुम्हारे मन मे आया,

कर्तव्य कर्म की प्रेरणा मिली,

कर्तापन के अभिमान से दूर होकर

ममता-आसक्ति से विरक्त हो

मन राग-द्वेश से दूर हुआ

यही भाव जीवन में सत्विकता लाया|

यही कर्म सात्विक कहलाया |'

'देह का अहम् हो जब मन में ,

सुख साधन पाने की लालसा हो,

अथक प्रयत्न भाव मन में रहे,

तन सुख-साधन में जुटा रहे,

एक कर्म से दूसरा हो

दूसरे से तीसरा हो,

कामना नित्य बढ्ती रहे

आसक्ति हो फल पाने की

भोगो में जीवन यापन हो,

ऐसा कर्म अहम् भरा,

ऐसा कर्म राजस हो |'

'बिन सोचे,बिन् समझे

जो कर्म आरम्भ किया जाता,

वह मोह के वश में होता है |

लोकहित का भाव नहीं,

हिंसा की परवाह नहीं,

हानि-लाभ की सोची नहीं

सामर्थ्य की चिन्ता नहीं,

बस मोह है,

ममता है,

आसक्ति-अहम् भाव की बात है,

अज्ञान भाव यही होता है,

तामसी-कर्म यह कहलाता है|'

'कर्ता कर्मो से संग रहित हो,

मन-इन्द्रिय-शरीर के कर्मो से

ममता-आसक्ति -कामना न रखे,

सरल भाव युक्त कर्म करें,

अहम् भाव से परे रहे

बाधाओं से विचलित न हो

स्वधर्म पालन में जुटा रहे

साहस-धैर्य से मग्न रहे |

ईष्ट फल की चिन्ता न हो,

न हर्ष करे,

न शोक करे,

बस संगरहित हुए जुटा रहे,

वही सात्विक भाव सदा पाए |'

'कर्मो से ममता जो रखे,

फल से आसक्ति बनी रहे,

रागी वह इच्छा पूर्ति में जुटा रहे,

राग-द्वेष

इच्छा-अभिलाषा में अहम् भाव जाग्रत रहे,

कभी हर्षित हो

कभी शोक करे

वह बार-बार जन्म ले

उसका चक्र कभी न टूटे

वह मुक्ति नहीं पाए,

वह हर जन्म में

बस रत रहे,

और अधिक पाने की चेष्टा करे,

वह राजस-भाव का कर्ता हो |

वह इस बन्धन से मुक्त न हो पाए |'

'मन-इन्द्रिय वश में न हो जिसके,

श्रद्धा भाव न मन में हो,

ज्ञान भाव से वंचित हो,

मूढ भाव में स्थित हो,

कटुता-कठोरता

मन-वाणी-शरीर में जिसके हो,

अपने मद में चूर रहे

अनिष्ट करे,अपकार करे,

धूर्त भाव से दूसरों की जीविका का नाश करे,

शोक-मग्न

चिन्ता करे

आज को कल पर टाले,

कल को परसों पर टाले,

शिथिल भाव से कर्म करे,

वह संस्कार रहित,

इस जीवन को नष्ट करे,

तामसी भाव का कर्ता हो,

जीवन में कुछ न कर पाए|

'हे धनन्जय!

बुद्धि से उत्पन्न हो जो ज्ञान

उसके तीन भेद अब जान|

इस ज्ञान को धारण करने की शक्ति भी

त्रिविध भावमयी तू ज्ञान|'

'हे पार्थ!

बुद्धि जो प्रवर्ति मार्ग को समझे,

शुभ कर्मो का

वर्ण-आश्रम-धर्म अनुसार,

निष्काम भाव से आचरण करे|

निव्रति मार्ग को समझे

समस्त कर्मो का

विरक्ति भाव से पालन करे,

वर्ण-आश्रम-प्रकृति परिस्थिति

अनुसार कर्तव्य का पालन करे|

भय से ग्रस्त न हो,

अभय हो कर्तव्य निभाए,

जीवन मरण के बन्धन से

हटकर

ईश्वर की सत्ता को माने

कर्म योग

भक्ति योग

और ज्ञान योग की राह जाने|

जीवन के बन्धन का,

मोक्ष प्राप्ति का

यथार्थ रूप

पहचाने|

निर्णय करने में भूल न हो,

संशय भाव न मन में हो,

वह बुद्धि सात्विकी हो,

वह कल्याणकारी,

सात्विक भाव से

परम ज्ञान को समझाए |'

'हे पार्थ!

धर्म-अधर्म का भेद न जाने जो,

कर्तव्य-अकर्तव्य का यथार्थ न समझे जो,

मेरा धर्म है क्या?

मेर कर्म है क्या?

मेरा कर्तव्य कैसा?

मैं लोकहित में रहूं

या अपने-स्वार्थ के कर्म करूं?

निर्णय करने में बुद्धि कुण्ठित हो,

संशय युक्त हो जाए,

ऐसी बुद्धि राजसी कहलाए|'

'हे अर्जुन!

तमोगुणी बुद्धि

अधर्म को धर्म ही माने|

दु:ख देने को सुख माने|

दूसरे की निन्दा को यश माने

नित्य को अनित्य,

पाप को पुण्य माने|

वह अपने आयाम स्थापित करे,

उसमें विवेक शक्ति न हो,

उसमें संशय भाव भी न हो,

क्योंकि वह जो करे,

अपनी बुद्धि के अनुरूप करे|

उसका निश्चय सदा तामसी हो|'

'हे पार्थ!

ज्ञान अर्जित कर धारण करना,

द्रन्ढ्ता से मन स्थिर रखना,

अटल भाव से

ध्यान योग से

मन-प्राण-इन्द्रिय

स्थिर करना अपने ध्येय पर|

एक लक्ष्य,

सब कर्मो से ऊपर

परमप्रिय परमेश्वर,

यह धृति

यही शक्ति विचलित न करती मानव को|

यही धारण शक्ति सात्विक होती|'

'हे प्रथापुत्र अर्जुन!

धारण शक्ति से

आसक्ति पूर्वक

जो पालन करता धर्म का,

फल की इच्छा मन में रखता,

अर्थ-काम जीवन का लक्ष्य,

यह राजस धृति मन इच्छा में विद्दमान|'

'हे पार्थ!

ज्ञान अर्जित कर धारण करना,

द्रन्ढ्ता से मन स्थिर रखना,

अटल भाव से

ध्यान योग से

मन-प्राण-इन्द्रिय

स्थिर करना अपने ध्येय पर|

एक लक्ष्य,

सब कर्मो से ऊपर

परमप्रिय परमेश्वर,

यह धृति

यही शक्ति विचलित न करती मानव को|

यही धारण शक्ति सात्विक होती|'

'हे प्रथापुत्र अर्जुन!

धारण शक्ति से

आसक्ति पूर्वक

जो पालन करता धर्म का,

फल की इच्छा मन में रखता,

अर्थ-काम जीवन का लक्ष्य,

यह राजस धृति मन इच्छा में विद्दमान|'

'हे पार्थ!

मन्द-मलिन बुद्धि युक्त

जो मानव अनिष्ट भाव ही सोचे,

ईष्ट नाश की चिन्ता में

भय रखे,शोक करे|

धन-जन-बल से उन्मत्त हो,

मद में चूर

स्वभाव से चिन्ता में डूबा रहे,

वह तामस धृति धारण किए

जीवन अपना नष्ट करे|

सात्विक बुद्धि

सात्विक ज्ञान

कर्म यज्ञ में

सात्विक धृति महान|'

'हे भरत श्रेष्ट!

सुख भी तीन भाव का होता|

सुख की महिमा अनन्त|

सुख शांत मन को मिलता|

सुख योग साधना से मिलता|

सुख भजन-ध्यान-सेवा से मिलता,

सुख समभाव में स्थित होकर मिलता,

ऐसा सुख ही रमणीय होता,

ऐसा सुख, दु:ख भाव भुलाता|

यह साधन बहुत विषम,

यह मनोस्थिति अति कठिन,

विष तुल्य जीवन लगे आरम्भ में,

वही जीवन ईश्वरीय भाव में

स्थित होकर,

लगे अमृत तुल्य

कर ईश्वर का ध्यान|

यही परमानन्द ही सात्विक कहलाए|

यही सात्विक सुख दिलवाए|'

सुख की उत्पत्ति

इन्द्रिय-विषय के संयोग से जब होती,

वह सुख आसक्ति से होता,

यह सुख स्थायी नही होता|

भोगकाल में अमृत तुल्य दिखता,

न मिलता जीवन विषम लगता|

आसक्ति में मानव पाप कर्म कर लेता,

संयोग-वियोग ऐसा दु:ख देता,

इच्छा-आकांक्षा-मोह भाव जाग्रत रहता

ऐसा सुख राजस होता|'

'जो योगकाल में

मन मोहित करता,

वह मन को

निद्रा-प्रमाद-आलस्य से जकड लेता,

मन क्रियाशील नहीं रहता,

मन दिवास्वप्न में रत रहकर

नए भाव सदा गढता रहता,

ऐसा मन अज्ञान भाव से

निद्रा-प्रमाद को ही सुख कहता|

कर्तव्य का आभास न होता,

बस क्रियाहीन जीवन होता

और वही सुख प्रतीत होता

ऐसा सुख तामस होता|'

'पृथ्वी में

आकाश में

और

देव लोक में

और

कहीं कोई भी स्थापित है

वह प्रकृति जनित

सत्व-रज-तम-गुण भावमयी|

रचना ईश्वर की

यह सृष्टि

सत्-रज-तम गुण भावमयी

इसी से गुण बनते,

गुणों में और गुण बनते

और उन्हीं से विकास होता,

नए-नए रूपों का निर्माण होता

पल-प्रतिपल क्रियाशील मानव का|'

'नियत कर्म स्वभाव से उपजे|

इस शरीर में चार भाव हैं

विराजमान,

इन्हें तू परिस्थिति के अनुरूप ज्ञान|'

'जो जैसे भाव से,

जो जैसी परिस्थिति में

यह देह धारण करता,

उसका वही कर्म बन जाता,

अनुकूल परिस्थिति होती

सुख-सेवा भाव सदा मन में होता|'

'प्रतिकूल परिस्थिति में

न सुख स्वयं के लिए होता,

और न सेवा भाव कहीं मन में होता

जन्म से जो भाव होते,

वही तुम्हारे संस्कार होते|

कुछ बातें किसी को बताई नही जातीं,

वह स्वभाव में बसी होती हैं|

वही संस्कार होती हैं|

वही स्वभाव कहलाती हैं|'

'इस स्वभाव के

तीन भेद तू जान|

यह तीन भेद

सत्व-रज-तमो गुण

भावमयी जान|

इन तीनों भावों से

इन तीनो गुणों से युक्त

मनुष्य के कर्मो का

निर्धारण होता|'

'जन्म से कुछ नही होता|

गुण से गुणों का जन्म होता|

जन्म से कर्म का रूप बनता,

परिस्थिति नए-नए कर्म रचति,

और स्वभाव के मिश्रण से

ज्ञाण के भाव से

मानव कर्म अपनाता|

जो कर्म अपनाओ|

उसे मन से अपनाओ |'

'सतगुण स्वभावमयी

ज्ञानी होता,

वह ज्ञान का भण्डार

पल-प्रतिपल फैलाता रहता|

हर प्राणी को ज्ञान देता|'

और

स्वभाव में तमोगुण मिश्रित रजोगुण होता

वही वैश्य कहलाता|

और

स्वभाव से रजो मिश्रित तमो गुण होता

वही शूद्र भावमयी होता|'

'ऐसे में जन्म से

नहीं निर्धारित होता वर्ण|

वर्ण स्वभाव के अनुरूप होता,

वर्ण परिस्थिति के अनुरूप होता

वर्ण हर प्राणी में

हर भाव में

हर दम बदल सकता

ज्ञान से, संस्कार से,

परिस्थिति से,

नित नए नवीन कर्म से

प्राणी का नियत कर्म

निर्धारित होता,

वही तुम्हारा वर्ण होता|'

माया-मोह से दूर हुआ जो,

धर्म वही,

कर्म वही एक हो जिसका

ज्ञान के प्रचार का,

ज्ञान के प्रसार का|

धर्म रक्षा हो मन में

तन से चाहे कष्ट सहे,

तन से स्वच्छ रहे,

मन जिसका पूर्णत: शुद्ध हो,

अपराध दूसरों

के क्षमा करे,

मन-इन्द्रिय-शरीर से सरल रहे,

वेद-विधान में

भक्ति भाव से

लोक में

परलोक में श्रद्धा हो|

वेद शास्त्र का अध्ययन करे,

अध्यापन करे,

ईश्वर को मन में स्थापित करे,

ईश्वरीय भाव का ज्ञान दे,

वही स्वभाव से ब्राह्म्ण हो,

वही सच्चा ब्राह्म्ण कहलाए|'

'न्याय की रक्षा हेतु,

मानवता की रक्षा हेतु,

मानव धर्म की रक्षा हेतु,

जो मन से उत्साहित हो,

साहस से युक्त हो,

वह शूरवीर रक्षा करे

तेज

धैर्य

चतुरता से

मानव जाति की|

न्याय संगत युद्ध हो

तो युद्ध करे

भयभीत न हो,

कर्तव्य पालन से विमुख न हो

व्यवहार कुशल हो

राजधर्म निभाए,

न्याय करे,

यथायोग्य दान दे,

सदाचारी हो,

लोकहित का ध्यान हो

ऐसे जन को क्षत्रिय धर्म का

ज्ञान हो|'

'समाज की सरंचना

में सभी वर्ण प्रधान,

ज्ञानी जन का ज्ञान,

क्षत्रिय का बल

और

वैश्य की कृषि

व्यापार,

क्रय-विक्रय,गौ पालन में योगदान|

एक के बिना दूसरा

दूसरे के बिना तीसरा

और तीसरे के बिना चौथा

सभी मह्त्वहीन|'

'सभी एक दूसरे के पूरक,

सभी अपने में महान|

सेवा धर्म का अपना महत्व

समाज का यही अंग सबसे महान|

जैसे पैरों के बिना,

शरीर महत्वहीन,

वैसे ही सब वर्णो का

आधार यही

इसे तू समाज का आधार-स्तम्भ मान|

शरीर क सारा बोझ

यही लेता,

बिन सेवा के ना होता ज्ञान,

बिन सेवा न चलता राजधर्म

बिन सेवा ना होता व्यापार कर्म

सेवा भाव का योग महान|'

'सब कर्म एक-दूसरे से बंधे,

कोई नहीं नीचा,

कोई नहीं किसी से महान|

एक-दूसरे के पूरक सभी,

सब का मिल-जुल कर होता उत्थान |

पर अहम् भाव का अस्तित्व न हो बस,

तभी हो पाए

समाज का उत्थान|'

'स्वभाव से जो कर्म अपनाया,

उसे तत्परता से निभाओ,

एक-दूसरे के पूरक बनकर,

लोकहित का भाव अपनाओ,

ईश्वरीय भाव यही होता है,

मानव परम सिद्धि को पाता है|'

'सरल स्वभाव से,

सरल भाव से

अपने-अपने कर्म निभा कर,

परमसिद्धि का समझ ज्ञान|'

'प्राणी मात्र की उत्त्पति का आधार

एक वही एक जो सबका पालनहार,

समस्त जगत है व्याप्त उसमें,

वही इस जीवन का आधार|

अपने कर्म का धर्म निभाकर,

आसक्ति रहित कर्तव्य कर्म निभाकर,

हम परम सिद्धि को पा सकते,

लोकहित में रत रहकर

हम परम धाम को जा सकते |'

'कर्तव्य कर्म सदा उत्तम,

धर्म सभी अति उत्तम|

मेरा धर्म कर्तव्य पालन,

हम सबका धर्म कर्तव्य पालन|

मैं तेरा धर्म न कर्म जानूं,

मैं अपना धर्म कर्म पहचानूं|

मैं अपना कर्म करूं

मैं अपना धर्म करूं,

मैं अपने धर्म-कर्म की तुलना क्यों करूं?'

'लोकहित का भाव वही,

वही श्रेष्टता दिलवाएगा,

स्वधर्म कर्म को करता हुआ

मानव कभी पापी नहीं कहलाएगा|'

'हे कुन्ती पुत्र!

सहज कर्म तू दोषरहित मान|

उसे न कभी त्याज्य मान|

कहीं न कहीं

सभी कर्मो में

दोष देखो तो मिल जाएगा|

लेकिन यह दोष तुझे

पाप नही दिलवाएगा |

'जैसे धुएं में अग्नि

और

अग्नि में धुआं व्याप्त रहता,

वैसे ही दोष भाव

यदि ढूंढो तो

हर कर्म में विराजमान रहता|'

'ऐसे में सरल-सहज

भाव से किया

अपना निज कर्म महान|

इसे ही तू जीवन मान|'

'सर्वत्र सरल जीवन का

एक भाव मान,

आसक्ति रहित हो मन

स्पृहा रहित हो जीवन,

वश में हो जब अन्त:करण

लोकहित से हो सभी कर्म सम्पन्न,

ऐसा जीवन मुक्ति दिलवाता,

कर्म बन्धन से विरक्त करके

यथार्थ ज्ञान का भाव होता

परम प्रिय ईश्वर से मिलन हो जाता|'

'ज्ञान योग है परम सिद्धि,

तत्व ज्ञान है परम ज्ञान |

सिद्धि-सम्पन्न मानव

परब्रह्मा को क्षण भर में ही पा लेता|

यही ज्ञानयोग की परानिष्ठा होती,

यही आत्मा को परमात्मा से मिलाती |'

'हे कुन्ती पुत्र! यह सरल भाव

यह सरल ज्ञान तू जान |

शुद्ध अन्त:करण हो जिसका,

हल्का-नियमित-सात्विक

भोजन ग्रहण जो करता,

सांसारिक-भोगों में

विषयों में व्यर्थ समय न गवांकर,

एकान्त-पवित्र भाव में रहकर,

सात्विक ज्ञान से,

सात्विक भाव से,

सात्विक धारणशक्ति अपनाकर,

इन्द्रियों को संयमित करके,

मन-वाणी-शरीर को वश में करके,

राग-द्देष को सर्वथा नष्ट करके

द्रढ निश्चय स्थापित करके,

वैराग्य भाव में जो रखे,

अहंकार-बल-घमन्ड

काम-क्रोध-परिग्रह का

सर्वथा त्याग करके

जो निरन्तर ध्यान योग में मग्न रहता,

ममता रहित, आसक्ति रहित,कामना रहित हुए

लोकहित में

शांत-सरल भाव में रत रहता,

वह प्राणी सच्चिदानन्दन ब्रह्मा में

अभिन्न भाव से स्थित होता |'

'वह उस ईश्वर से मिलन कर पाता,

वह उस ईश्वर में आत्मसात हो जाता |

वह उस सच्चिदानन्दन ब्रह्मा में

एकी भाव से स्थित हो जाता |'

'वह प्रसन्न मन वाला योगी

न तो किसी के लिए शोक करता

न आशंका होती मन में ,

न कष्ट भाव की चिन्ता करता |

ऐसा समभाव युक्त योगी

मेरी पराभक्ति का पात्र होता |'

'वह ज्ञान योगी तत्व ज्ञान पा लेता |

वह तत्व ज्ञान का

साधन पाकर,

यथार्थ भाव से मुझे

समझता,

मैं जो हूं ,

जैसा हूं

कितना हूं

वह मेरा सूक्ष्म तत्वा भी

पा लेता,

वह भक्ति भाव से मेरे

उस तत्व में ही

समा जाता |

वह मेरा अंश ही बन जाता

वह उसी क्षण मुझमें रच जाता |'

'वह कर्मयोगी,

मेरे परायण होकर

समस्त कर्मो को मुझमें समर्पित करके

सनातन-अविनाशी परमपद

को पा लेता |

वह सब कुछ मुझको अर्पण करके,

समबुद्धि योग मे स्थित होकर,

मुझे मेरा प्रिय हो जाता

वह मुझमें ही समा जाता |'

'वह मेरी कृपा से

समस्त कष्टों का निवारण पाता |

वह समस्त भोगों से पार हो जाता |'

'अहंकार यदि हो तेरे मन में ,

वचन नहीं समझेगा तू,

परमप्रिय हितैषी समझ मुझे तू,

वरना यह अहम् भाव तुझे

पथभ्रष्ट करके नष्ट कर देगा |

क्योंकि तू अहंकार भाव से ग्रस्त हुआ,

युद्ध न करने की मिथ्या से लिपटा हुआ है |'

'भाव समझेगा ,

शब्दों के तो

सहज कर्म को जानेगा,

युद्ध तो करना है,

मोह में फंसकर

युद्ध न करने की

चेष्टा न कर |

अपने स्वभाविक कर्म को

न त्याग |

युद्ध से पीछे न भाग |'

'अपने स्वाभाव से

अपने संस्कारों से

अपने ज्ञान से

इस भाव को जान,

कर्मो में लोकहित को देख,

उसे तू सर्वोपरि मान

तू युद्ध के लिए

स्वयं को कर्म-योग

में बंधा मान!'

'हे अर्जुन!

इस शरीर को तू यन्त्र मान |

अन्तर्यामी परमेश्वर को तू इसका नियन्ता मान |

वह अपनी माया से,

सबके ह्रदय में स्थित हुआ

कर्मो के अनुसार इसे चलाता |

'वह' प्रेरक है तेरा,

उसे तू अपना इष्ट मान |

उसे तू अपने में स्थित मान |'

'हे भारत!

तू उसकी शरण में स्थापित कर

अपने प्राण |

उसी की कृपा से तू परमशांति को पाएगा,

उसी की अनुकम्पा से तू परमधाम को जाएगा |'

'यह अति गोपनीय ज्ञान

मैंने तुझसे अब कह दिया |

इस का तत्व समझ,

इसका भाव समझ

विचार कर

और

जो चाहता है,

जैसा चाहता है

वैसा ही कर |'

'सम्पूर्ण गोपनीयों से

अति गोपनीय

मेरे परम रहस्ययुक्त

वचन को तू फिर से सुन|

तू मेरा अतिशय प्रिय|

तुझसे मेरा प्रेम बडा,

मै तुझसे फिर एक वचन कहूंगा,

तेरा हितकारक वचन कहूंगा |'

'हे अर्जुन!

तू मुझमें मन वाला बन जा

तूमेरा भक्त बन जा,

मेरे भाव को तू जान,

मुझमें स्थापित कर अपना ध्यान,

सब मुझको अर्पण कर दे,

तू मेरा ही रूप बनेगा,

तू मेरा ही प्रिय रहेगा

मेरी भक्ति कर,मुझको सब अर्पण कर,

यह सत्य प्रतिज्ञा मैं करता हूं ,

मैं अपना रूप तुझे देता हूं |'

'हे अर्जुन!

अपने समस्त कर्तव्य कर्मो

को मुझमे अर्पित कर दे,

जीवन के समस्त धर्मो को

मुझमें अर्पित कर दे,

तू बस मेरी शरण मे आ जा,

तू बस मुझ

सर्व शक्तिमान,

सर्वाधार की शरण में आ जा,

तू मेरा प्रिय,

मेरे रूप में समा जा|'

'तू सहज ज्ञान पा जाएगा,

स्वयं पाप मुक्त हो जाएगा,

शोक मत कर,

बस मेरी शरण में आ जा |'

'यह परम गोपनीय

गीता ज्ञान

तू अमूल्या जान |

किसी काल में

किसी भाव में

भक्ति रहित,

जिज्ञासा रहित,

तप रहित प्राणी से न कहना |

जो ईश्वरीय भाव न रखता हो,

उसे इसका भाव न कहना |

जो श्रद्धा भाव को जानेगा,

वह परम प्रिय मेरा होगा,

वह इस ज्ञान का प्रचार करेगा,

वह मेरे भक्तों को शक्ति देगा,

वह इस ज्ञान को

सहज भाव से प्रकट करेगा,

वह प्रिय भक्त मेरा

मुझे ही पाएगा,

वह मेरे परम धाम को आएगा |'

'ज्ञान योगी का यह

उत्तम कर्म होगा,

उसका यही धर्म होगा,

वह मेरा अति प्रिय होगा |

जो इस गीता शास्त्र

का अध्ययन करेगा,

वह ज्ञान का भाव समझेगा,

वह ज्ञान योगी

तत्व ज्ञान को जानेगा,

वह मेरे भाव को पाएगा |'

'जो श्रद्धा से,

दोष दृष्टि से रहित हुआ

इसका श्रवण करेगा,

वह पाप मुक्त होगा,

वह उत्तम कर्म करेगा,

वह मेरे श्रेष्ठ भाव को पाएगा|

हे पार्थ!

तुमने एकाग्र चित्त हो

क्या मेरे भाव का श्रवण किया?

हे धनन्जय!

तू बता अज्ञान जनित

मोह तेरा क्या नष्ट हो गया?'

अर्जुन् तब बोला,

'हे अच्युत!

तुमने कृपा की मुझ पर,

मेरा मोह नष्ट अब हो गया,

अज्ञान जनित मेरा मोह नष्ट हुआ,

दिव्य ज्ञान का प्रकाश मिला,

मैं संशय रहित हूं अब हुआ|

अब मैं लोकहित हेतु

निमित मात्र बनकर आपकी आज्ञा का

पालन करूंगा|'

गीता शास्त्र

ईश्वर के मुख से

अर्जुन सगं

संजय ने सुना,

उसी का वर्णन उसने किया

वह बोला

धृतराष्ट्र से,

'हे राजन!

सब के ह्रदय में स्थित

सबके पालनहार

श्री वासुदेव के

अतिगोपनीय वचन

मैनें भी सुने

अर्जुन के सगं!

मन मेरा भी रोमांच भरा,

जीवन मेरा भी गदगद् हुआ|

श्री वेदव्यास की कृपा थी मुझ पर,

मुझे दिव्य दृष्टि दी,

मैनें इस परम गोपनीय ज्ञान को

ईश्वर के श्री मुख से प्रत्यक्ष सुना|

अर्जुन का जीवन तो सफल हुआ,

मेरा भी कल्याण हुआ |'

'हे राजन!

इस अदभुत

कल्याणकारी

रहस्ययुक्त संवाद को

बार-बार हूं स्मरण करता,

मन मेरा हर्षित होता,

कल्याण मेरा स्वयं हो गया!

'हे राजन!

श्री हरि का विलक्षण रूप

भी मैने देखा,

मेरा चित्त आश्चर्य भरा,

मैं बार-बार हर्षित हो रहा|

हे राजन!

जहां योगेश्वर भगवान

श्री कृष्ण स्वयं हैं विद्दमान

और् जहां

यह धर्म परायण,

कर्म योगी

अर्जुन,

वहीं श्री विजय

होगी,

वही विभूति,

वही अचल नीति होगी|'

'हे राजन! पाण्डवों की

विजय अवश्य होगी|

जहां सूर्य है,

वहीं प्रकाश होगा|

जहां ईश्वर हैं

वहीं भक्त का वास होगा|'

''

19) **कृष्ण भाव**

विश्व एक

तेरे रूप अनेक

तू हर धर्म में रचा- बसा!

भिन्न - भिन्न धर्म धरा पर स्थापित,

भिन्न - भिन्न मत, भिन्न भाषाएँ |

नए - नए रूप दृष्टिगत होते

मिलती नित नई - दिशाएँ |

तू सब धर्मो में स्थित हुआ

कहीं राम - रहीम,

कहीं महावीर, कहीं गौतम बुद्ध |

कहीं नानक, कहीं अल्ला सबका,

कहीं मौला, कहीं यीशू मसीह !

तेरे रूप अनेक, फिर भी तू एक |

नए- नए नाम दिए तुझे हमने,

तू नियन्ता इस सृष्टि का

तू सब रूपों में एक रूप,

तू हर रूप में बसा हुआ |

मानव का कल्याण है करता,

हर रूप तेरा इसी एक रूप में बसा हुआ |